ऐं नमः यथार्थवादिने परमात्मने ।

श्री आत्मानंद-कमल-दान-प्रेम-रामचन्द्र-भुवनभानुसूरि-सद्गुरुभ्यो नमः ❀

कल्पित इतिहास से सावधान

❖

मीमांसक :

न्याय विशारद आचार्य श्रीमद्

विजय भुवन भानु सूरीश्वरजी महाराज साहब के शिष्य

मुनि श्री भुवनसुन्दर विजयजी

❖

संशोधक एवं मार्गदर्शक ।

नव्य न्याय के प्रखर विद्वान्

मुनिराज श्री जयसुन्दर विजयजी महाराज

❖

सम्पादक :

कपूरचन्द जैन

भायलापुरा, अस्पताल के पीछे

हिन्डौन सिटी, (जि० सवाई माधोपुर) राजस्थान

प्रकाशक :

दिव्य दर्शन ट्रस्ट

बम्बई–४

❖

प्रथम संस्करण : १०००

१९८३

मूल्य : १०) रु०

❖

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

(१) कपूरचन्द जैन

भायलापुरा, अस्पताल के पीछे

हिन्डौन सिटी (सवाई माधोपुर) राज०

(२) मंत्री श्री संभवनाथ श्वे० जैन मन्दिर

ओसवाल मोहल्ला

मदनगंज–किशनगढ़

(जि० अजमेर) राज०

❖

मुद्रक :

पाँचूलालजी जैन

कमल प्रिन्टर्स

मदनगंज–किशनगढ़ (राज०)

फोन : ८३

विषय सूची

सम्पादकीय	कपूरचन्द जैन	[प्रथम]
मीमांसकीय	मुनि भुवनसुन्दर विजयजी	[द्वितीय]
पुरोवचन	मुनि जयसुन्दर विजयजी	[तृतीय]
दो शब्द	मुनि गुणसुन्दर विजयजी	[चतुर्थ]

१	प्राक्कथन	१
२	तीर्थङ्करों का जन्म महोत्सव	७
३	शासन रक्षक देव-देवियां	११
४	तीर्थङ्करों की माता के गर्भ में भी पूजनीयता	१७
५	तीर्थङ्कर के बारह गुण	२२
६	श्री ऋषभदेव का निर्वाण और पावन दाढ़ा	२६
७	श्री अष्टापद गिरि पर जिन मन्दिर	२९
८	पूर्वाचार्यों का महान उपकार	३६
९	आर्द्रकुमार और जिन प्रतिमा	४१
१०	जरासंध और कृष्ण के बीच युद्ध	४५
११	वैशाली में श्री मुनिसुव्रत स्वामी का स्तूप	४८
१२	आर्य श्री शय्यंभवसूरि और जिन प्रतिमा	५१
१३	परमात्मा श्री नेमिनाथ व संहार	५४
१४	श्री पार्श्वनाथजी को वैराग्य	५७
१५	प्रतिमा से वैराग्य का उपदेश	६०
१६	अरिहंत पर अभक्ति एवं पूर्वाचार्यों पर अबहुमान	६२
१७	अंबड सन्यासी और सम्यग्दर्शन	६५
१८	दशपूर्वधर श्री वज्रस्वामी के विषय में पक्षपात	६९
१९	जैन धर्म और आडम्बर	७३
२०	नमो बंभीए लिवीए	७८
२१	चैत्य यानी जिनमन्दिर या जिनप्रतिमा	८१

२२	एक हास्यास्पद कल्पना	८९
२३	लब्धिनिधान श्री गौतम स्वामी	९७
२४	स्याद्वाद सिद्धान्त में हिंसा एवं अहिंसा	१०२
२५	श्री भद्रबाहु स्वामी और उवसग्गहरं स्तोत्र	१०६
२६	जैन धर्म में सम्यक् श्रद्धाकी व्यापकता	११३
२७	अनुचित खुशामद	१२१
२८	राजा सम्प्रति के साथ अन्याय	१२८
२९	अवंति सुकुमाल और जिनमन्दिर	१३५
३०	पूज्य श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण	१३८
३१	मथुरा के कंकाली टीले की खुदाई	१४२
३२	भक्तामर और कल्याण मंदिर स्तोत्र	१४७
३३	जैन धर्म में मूर्तिपूजा और प्राचीन शिलालेख	१५१
३४	स्थानकपंथी समाज में इतिहास की कमी	१५७
३५	परिशिष्ट—मूर्तिपूजा में शास्त्रों की सम्मति	१६२

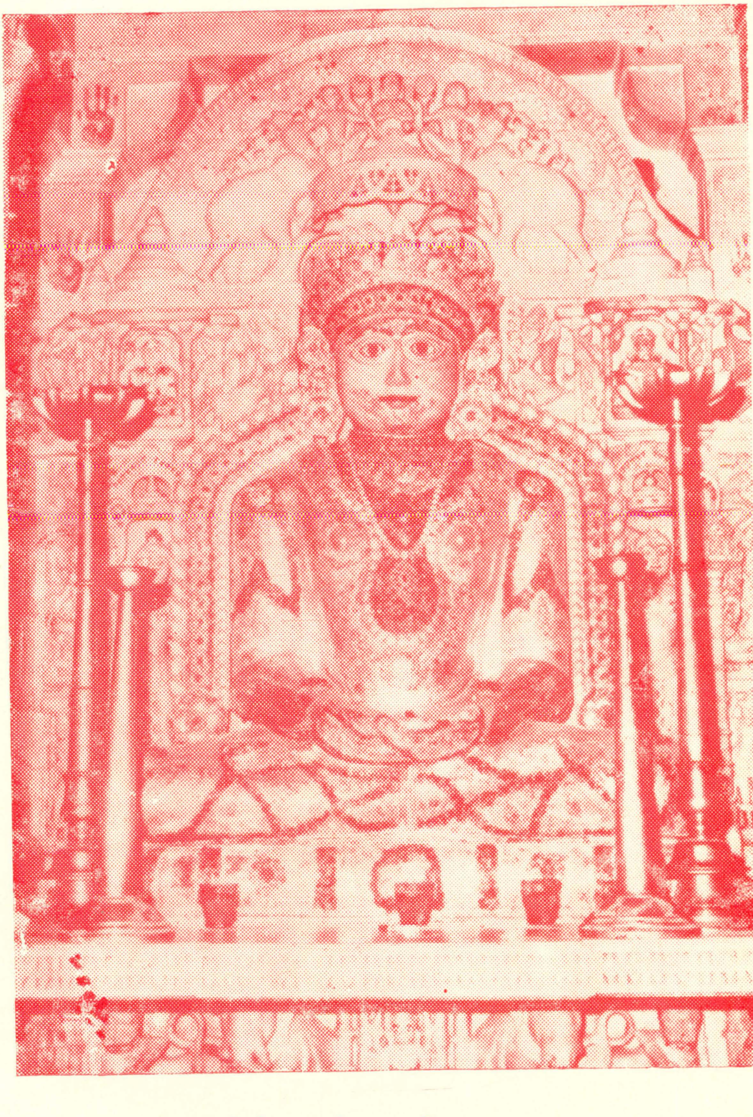

युगादिदेव श्री श्रादीश्वर भगवान
देलवाड़ा [माउन्ट श्राबू]

प्रवचन प्रभावक वर्धमान तपोनिधि पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद्

विजय भुवन भानुसूरीश्वरजी महाराज

सम्पादकीय

काच के घर में रहने वाला जब अन्य के फौलादी महल पर पत्थर उठाता है, तब वह स्वयं को सुरक्षित समझने की बड़ी भूल करता है। ठीक इसी प्रकार मूर्तिपूजा जैसे शाश्वत जैन आचार के सामने पत्थर फेंकने की अनुचित चेष्टा स्थानकवासी सम्प्रदाय के अग्रणी आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज ने की है।

आचार्य श्री ने "जैन धर्म का मौलिक इतिहास खंड १ और २" लिखकर आगम शास्त्रों, आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य, पुरातत्त्व सामग्री, विद्यमान हजारों जैन तीर्थों और लाखों जिन मूर्तियों को झूठा करने का दुस्साहस किया है। जिससे जैन समाज को बहुत आशा और अपेक्षा है ऐसे विद्वान् डा० नरेन्द्र भानावत भी ऐसी निम्न कक्षा की पुस्तक छपवाने में साथ-सहकार देते हैं तब खेद होता है।

१०८ से भी अधिक शिष्यों के गुरु एवं १०८ वर्धमान तप आयंबील की ओली के आराधक न्याय विशारद् पूज्य आचार्यश्री विजय भुवन भानुसूरिजी महाराज साहब के शिष्यरत्न मुनिराजश्री भुवन सुन्दर विजयजी महाराज साहब ने आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज द्वारा लिखित "जैन धर्म का मौलिक इतिहास" जो सत्य तथ्य से रहित होने के कारण सर्वथा अमौलिक और कल्पित है, पर सुन्दर मीमांसा–टीका रचकर प्रबुद्ध जैन समाज के सामने रेड लाईट दिखायी है, जो

अत्यन्त स्तुत्य है। "मूर्तिपूजा आगमिक है" ऐसा परिशिष्ट जोड़कर मुनिश्री ने मीमांसा को प्रामाणित भी किया है।

प्राचीन साक्ष्य उपलब्ध होते हुए भी मूर्तिपूजा जैसे विषय को विवादास्पद बनाये रखना अशोभनीय कृत्य है। आचार्य श्री द्वारा रचित इतिहास पुरातत्त्व और शोध के विद्यार्थियों को मार्ग दर्शन देने में बिल्कुल असमर्थ है। इसको जैन धर्म का इतिहास कैसे कहा जा सकता है?

जैन शास्त्रों में मूर्तिपूजा के विषय में हजारों-लाखों उल्लेख मौजूद हैं। "प्रश्न व्याकरण" नामक आगम सूत्र में चैत्य यानी जिन मन्दिर की वैयावच्च-भक्ति कर्म निर्जरा का कारण है ऐसा कहा है, यथा—

अत्यन्त बाल दुब्बल, गिलाण वुड्ढ सर्वक।
कुलगण संघ चेइयट्ठे च णिज्जरट्ठी॥

भावार्थ—अति बाल, दुर्बल, ग्लान, वृद्ध, तपस्वी, कुल-गण (साधु समुदाय), चतुर्विध संघ और चैत्य यानी जिन मन्दिर-जिन प्रतिमा की वैयावच्च (सेवा-भक्ति) निर्जरा (कर्मक्षय) कारक होती है।

व्यवहार सूत्र में यावत् जिनप्रतिमा के समक्ष भी पाप की आलोचना करने को कहा है, यथा—

जत्येव सम्ममचियाइ चेइयाई पाणिज्जा।
कप्प सेसस्स संतिए आलोइत्तए वा॥

भावार्थः—आचार्य आदि बहुश्रुत गीतार्थ का संयोग न मिले तो "चेइया" यानी जिन प्रतिमा के समक्ष जाकर आलोचना (पाप को प्रगट) करनी चाहिए।

१० पूर्वधर महर्षि तत्त्वार्थ सूत्र रचयिता भगवान श्री उमा-स्वाति महाराज "तत्त्वार्थ सूत्र कारिका" में लिखते हैं कि—

अभ्यर्चनादर्हतां मनः प्रसादस्ततः समाधिश्च ।
तस्मादपि निःश्रेयसमतो हि तत्पूजनं न्याय्यम् ॥

अर्थात्—श्री अरिहंत परमात्मा की अभ्यर्चना करने से मन की प्रसन्नता, मन के प्रसाद से समाधि और समाधि से निःश्रेयस मोक्ष प्राप्त होता है। इसलिये सभी मुमुक्षु आत्माओं को अरिहंत की पूजा अवश्य करनी चाहिए, यह न्याय संगत एवं उचित है।

शास्त्रों में इतनी स्पष्ट बात होते हुए भी आचार्य श्री ने स्वयं को अज्ञान ही रखना चाहा है। उनके द्वारा रचित इतिहास की सबसे निर्बल कड़ी यह रही है कि—उन्होंने सारे इतिहास में कहीं भी "चैत्य" (यानी जिनमन्दिर या जिन प्रतिमा) शब्द का शास्त्र या कोष–व्याकरण से अर्थ ही नहीं किया है। फिर भी उन्होंने "चैत्यवास" आदि की चर्चा चलायी है, जो सर्वथा निरर्थक ही है।

मूर्तिपूजा में आडम्बर एवं हिंसा कहने वाले ये लोग स्वयं भारी आडम्बर रचते और अपने गुरुओं के पगलिया एवं स्मृति मन्दिर आदि बनवाने की हिंसा भी करते हैं। अपनी तस्वीर छपवाकर और बटवाकर ये गृहस्थों के घर में भी अपना स्थान सुरक्षित रखने लगे हैं। तीर्थङ्कर भगवान के जन्म कल्याणक आदि महोत्सवों को ठाठ से मनवाने में आडम्बर मानने वाले ये मुनिगण स्वयं की जन्म जयंति दिल और दिमाग पूर्वक बड़े आडम्बर के साथ मनवाते हैं, स्वयं की तस्वीर युक्त बड़ी बड़ी पत्रिकाएँ छपवाते हैं, गुरु के जन्म दिन पर हजारों लोग इकट्ठे होते हैं, सरस माल मिलता है और मौज मजा उड़ाते हैं। मूर्तिपूजा विरोधी ये लोग स्वयं के गुरु की तस्वीर वाले लोकेट और चांदी के सिक्के आदि भी बांटते हैं, निज गुरु को निर्ग्रन्थ परम्परा के विरुद्ध

हजारों रुपयों की थैली अर्पण की जाती है। गुरु के नाम पर हजारों भक्तों के लिये सरस भोजन आदि के आरम्भ-समारम्भ रूप महा हिंसा, वे भक्त नियम बद्ध न होने से रात्रि भोजन का पाप एवं ठाठ-आडम्बर सब कुछ होता है, सिर्फ भगवान महावीर का नाम, भगवान महावीर की आज्ञा और भगवान महावीर की प्रतिमा-तस्वीर ही कहीं नहीं दिखाई देती ! अन्य के आगम कथित शास्त्रीय धर्म अनुष्ठानों को आडम्बर और हिंसा कहने वालों के लिये यह सब अत्यंत लज्जास्पद है।

आचार्य श्री से यही प्रार्थना है कि आगे शायद वे "जैनधर्म का मौलिक इतिहास-खंड-३" लिखेंगे, तब सत्य लिखें जिससे साम्प्रदायिक द्वेष आदि बढ़े नहीं और समय एवं सम्पत्ति का दुरुपयोग न होवे।

"कल्पित इतिहास से सावधान" नामक इस मीमांसा के लिये नव्यन्याय के प्रखर विद्वान् मुनिराज श्री जयसुन्दर विजयजी महाराज ने "पुरोवचन" एवं विद्वान् मुनिराज श्री गुणसुन्दर विजयजी महाराज ने "दो शब्द" लिख दिये हैं, जिनका योगदान कभी भी भुलाया नहीं जा सकता।

पूज्य आचार्य श्रीमद् विजय विक्रमसूरिजी महाराज साहब और पूज्य आचार्य श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरिजी महाराज साहब का मेरे पर विशेष उपकार और कृपादृष्टि रही है, जिसके कारण ही मेरी तबियत ठीक न होते हुए भी प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्पादन कार्य मैं कर सका हूं।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघको विनती है कि पूज्य आचार्य श्री विजयानन्दसूरिजी (आत्मारामजी महाराज) लिखित "सम्यक्त्व शल्योद्धार", पूज्य आचार्य श्री लब्धिसूरीश्वरजी महाराज रचित

"मूर्तिमंडन", इतिहासज्ञ मुनिराज श्री ज्ञानसुन्दर विजयजी महाराज रचित "मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास", पूज्य पन्यास प्रवर श्री भद्रंकर विजयजी गणि महाराज रचित "प्रतिमा पूजन" आदि पुस्तकों का प्रचार प्रसार करना-करवाना अत्यन्त आवश्यक है।

मुनिराज श्री भुवनसुन्दर विजयजी महाराज द्वारा लिखित इस मीमांसा पुस्तक द्वारा भविकजन मूर्तिपूजा विषयक सत्य मार्गदर्शन पावेंगे यही आशा है। इस पुस्तक के मुद्रण में दिव्य दर्शन ट्रस्ट एवं श्वेताम्बर जैन मूर्तिपूजक संघ [मदनगंज] का सराहनीय द्रव्य-योग-दान रहा है, जिसका मैं अत्यंत आभारी हूं। पुस्तक में रही त्रुटियों की सब जिम्मेदारी मेरी है।

पाठकगण इसको सादर स्वीकार करेंगे और सत्य के नजदीक आयेंगे यह आशा करता हूं। पाठकों से निवेदन है कि इस पुस्तक पर जो भी आपकी राय हो वह निम्नलिखित पते पर भेजने की कृपा करें।

पता :—
भायलापुरा
अस्पताल के पीछे
हिन्डौन सिटी
[जि० सवाईमाधोपुर]
(राज०)

कपूरचन्द जैन
दि० ११-१०-१९८३
आसोज सुदी पंचमी

मीमांसकीय

लोहामंडी आगरा से छपी स्वाध्याय की किताब "मंगलवाणी" जिसका संकलन स्थानकमार्गी अखिलेश मुनि ने किया है, इस किताब के ग्यारह संस्करण द्वारा आज तक जिसकी ६० हजार से भी ज्यादा प्रतियाँ मुद्रित हो चुकी है। इस किताब में "बृहद् शांति" नामक स्तोत्र को संक्षिप्त करके छपवाया गया है। यानी मूर्तिपूजा समर्थक पाठों को आगे पीछे से हटाकर "बृहद् शांति" को संक्षिप्त कर दिया है।

स्थानकमार्गी अमोलक ऋषि ने उनके माने हुए ३२ आगमों का हिन्दी अनुवाद किया है। श्री राजप्रश्नीय सूत्र में देवता द्वारा जिन प्रतिमा पूजन का वर्णन आया है, वहाँ धूप देने के विषय में मूलपाठ यह है कि—

"धूवं दाउणं जिणवराणं"

टीका—धूपं दत्वा जिनवरेभ्यः।

पार्श्वचन्द्र सूरिकृत टब्बा—धूप दीधुं जिनराज ने।

लोंकागच्छियों की मान्यता—धूप दिया जिन भगवान को।

किन्तु स्थानकपंथी अमोलक ऋषि ने श्री राजप्रश्नीय सूत्र कथित पाठ को परिवर्तन करके लिख दिया है कि—

"धूवं दाउणं पडिमाणं"

और अर्थ किया—"धूप दिया प्रतिमा को।" फिर प्रतिमा का अर्थ जिनप्रतिमा न करके कामदेव की प्रतिमा कर दिया है। मूल

शास्त्रों में और उनके भाषान्तर में इन महाशय ने अनेक स्थलपर उनकी मान्यता के अनुकूल परिवर्तन किये हैं तथा जी चाहा मनमाना अर्थ किया है, फिर भी पूर्वाचार्यों को झूठा करते हुए वे "शास्त्रोद्धार मीमांसा" नामक पुस्तक में लिखते हैं कि—

※ ※ ※ श्री जैन धर्म प्रचारार्थ श्री महावीर स्वामीजी के निर्वाण के १२४२ वर्ष में शीलांगाचार्य ने आचारांग और सूयगडांग की टीका बनाई, १५९० वर्ष पीछे अभयदेवसूरि ने स्थानांग से विपाक पर्यन्त ९ अंग की टीका बनाई, इसके बाद मलयगिरि आचार्य ने राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, पन्नवणा, चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्य-प्रज्ञप्ति, व्यवहार और नंदीजी इन ७ सूत्र की टीका बनाई, चन्द्रसूरिजी ने निरयावली का पंचक की टीका बनाई, ऐसे ही अभयदेवसूरि के शिष्य मल्लधारी हेमचन्द्राचार्य ने अनुयोगद्वार की टीका बनाई, क्षेमकीर्तिजी ने बृहत्कल्प की टीका की, शांतिसूरिजी ने श्री उत्तराध्ययनजी की वृत्ति–टीका–भाष्य–चूर्णिका–निर्युक्ति वगैरह सहित सविस्तार बनाया। इन टीकाकारों ने अनेक स्थान मूल सूत्र की अपेक्षा रहित व वर्तमान में स्वतः की प्रवृत्ति को पुष्ट करने जैसे मनः कल्पित अर्थ भर दिये। ※ ※ ※

स्थानकवासी महा पण्डित श्रीमान् रतनलाल जी डोशी (शैलाना वाले) ने "जैनागम विरुद्ध मूर्तिपूजा—खंड–१" नामक पुस्तक में चारण मुनियों का नन्दीश्वर आदि द्वीप में तीर्थयात्रा हेतु जाने को सैर-सपाटा बताया है। यथा—

※ ※ ※ हमारे विचार से [चारणमुनिका] वहां जाने का मुख्य कारण नंदन वन की सैर करने का ही हो सकता है, क्योंकि यह भी एक छद्मस्थता की पलटती हुई चञ्चल विचार धारा का परिणाम है। ※ ※ ※

प्राचीन आचार्यों के प्रति अश्रद्धा व्यक्त करते हुए स्थानक-वासी समाज के कर्णधार आचार्य हस्तीमल जी "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" में लिखते हैं कि—

❂❂❂ इस प्रकार बहुत-सी चमत्कारिक रूप से चित्रित घटनाओं को भी इस ग्रंथ में समाविष्ट नहीं किया गया है। मध्ययुगीन अनेक विद्वान ग्रन्थकारों ने सिद्धसेन प्रभृति कतिपय प्रभावक आचार्यों के जीवन चरित्र को आलेखन करते हुए उनके जीवन की कुछ ऐसी चमत्कार पूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है, जिन पर आज के युग के अधिकांश चिन्तक किसी भी दशा में विश्वास करने को उद्यत नहीं होते। ❂❂❂

यही आचार्य अपनी "सिद्धान्त प्रश्नोत्तरी" किताब के पृ० १८ पर लिखते हैं कि—

❂❂❂ कुछ लोग कहते हैं कि—भरतजी ने मरीचि को होने वाला तीर्थंकर जानकर वन्दन किया, ऐसा टीका में आता है। ठीक है, यह बात कथा में है पर शास्त्र में नहीं होने से प्रमाण कोटि में नहीं मानी जाती। ❂❂❂

स्थानकपंथी मत प्रवर्तक लोंकाशाह के विषय में स्थानकवासी पण्डित श्रीमान् वाडीलाल मोतीलाल शाह—अपनी "ऐतिहासिक नोंध" में लिखते हैं कि—मैं इस बात को अंगीकार करता हूं कि मुझे मिली हुई लोंकाशाह विषयक हकीकतों पर मुझे विश्वास नहीं है। तथा—

❂❂❂ [लोंकाशाह के चारित्र के विषय में हम अभी अंधेरे में ही हैं] लोंकाशाह कौन थे ? कब हुए ? कहां कहां फिरे ? इत्यादि बातें आज हम पक्की तरह से नहीं कह सकते हैं। जो कुछ बातें उनके बारे में सुनने में आती हैं, उनमें से मेरे ध्यान में मानने योग्य ये जान पड़ती हैं।

ऐतिहासिक नोंध पृ० ५६ ❂❂❂

आगे वे लोंकाशाह के विषय में लिखते हैं कि—

❂❂❂ पर इस तरह का उल्लेख उनके निर्गुणे भक्तों ने कहीं नहीं किया कि लोंकाशाह किस स्थान में जन्मे ? कब उनका देहान्त हुआ ? उनका घर संसार कैसे चलता था ? वे किस सूरत के थे ? उनके पास कौन-कौन

शास्त्र थे ? इत्यादि इत्यादि हम कुछ नहीं जानते हैं।

[ऐतिहासिक नोंध पृ० ८७] ❂❂❂

स्थानक मत के आद्य प्रवर्तक लोंकाशाह के विषय में इस प्रकार का अंधकार होते हुए भी यदि कोई व्यक्ति अपने मान्य पुरुष के प्रति प्रशंसाओं का पहाड़ खड़ा कर दे या उपमाओं का सागर सुखा दे तो हमें कुछ भी आपत्ति नहीं है, किन्तु जब वे हमारे आप्त, मान्य, महान उपकारी, महान ज्ञानी पूर्वाचार्यों को शिथिलाचारी कहें, पापधर्म के प्रवर्तक कहें तब ऐसे जघन्य कृत्य कारक के सामने शांत कैसे बैठा जा सकता है ? स्थानकवासी सम्प्रदाय के जाने माने आचार्य हस्तीमलजी ने 'पट्टावली प्रबन्ध संग्रह" में लिखा है कि—

❂❂❂ वीर निर्वाण (पश्चात्) ६२८ में और विक्रम संवत् ४१२ के वैशाख शुक्ला ३ के दिन प्रतिमा की स्थापना हुई। ३६ वर्ष तक अर्थात् ४४८ की साल तक कागज पर भगवान की तस्वीर बनाकर पूजन करते और उस पर केशर के छींटे डालते। इससे तस्वीर का आकार छिपने लगा। तब लिंगधारी रतन गुरु ने विचार कर काष्ट की प्रतिमा कराई। संवत् ४४८ के माघ शुक्ला ७ से काष्ठ की प्रतिमा पूजी जाने लगी। ४९ वर्ष तक यह प्रथा चलती रही। फिर गुरुओं ने विचार किया कि काष्ठ की प्रतिमा नित्य पक्षाल करने से गीली रहती है, उसमें फूलन आ जाती है, इसलिए यह ठीक नहीं है। ❂❂❂

[आचार्य हस्तीमलजी का झूठ देखो कि वे कागज पर भगवान की तस्वीर बनाकर पूजने की बात लिखते हैं जबकि भारतवर्ष में उस समय कागज का प्रचलन ही नहीं था। आगे वे कल्पित एवं हास्यास्पद बातें लिखते हैं कि—]

❂❂❂ तब (लिंगधारी गुरु ने) संवत ४९७ (चार सौ सतानवे) की साल चैत्र शुक्ला १० को मंदिर में पाषाण की प्रतिमा स्थापित की।

धातु की मूर्तियां बनने लगी। लोगों को आकर्षण बढ़ाने को प्रभावना, नाटक और स्वामी वात्सल्य आदि चालू किए। इस प्रकार सं० ८८२ में हिंसा धर्म प्रकट हुआ, उसका जोर बढ़ा। ✠ ✠ ✠

✠ ✠ ✠ शिथिलाचारी साधुओं ने शास्त्रों को भंडारों में रखकर नयी रचना चालू की। वे काव्य, श्लोक, स्तुति और भाषा की रचना मनपसन्द संस्कृत व प्राकृत भाषा में करने लगे। चौपाई, कवित्त, दोहा, गाथा, छन्द, गीत आदि अनेक प्रकार की जोड़े कर लोगों को सुनाते, जिनेन्द्र देव की आज्ञा का लोप कर हिंसा धर्म की पुष्टि करते और रात में जागरण करवाते तथा पुस्तकों की पूजा करवाते, बाजा बजवाते, गीत गवाते और पूज्य कहाते हुए पांव मंडवा-कर सरस माल खाते थे। ✠ ✠ ✠

✠ ✠ ✠ जिनेन्द्र पूजा के निमित्त नहाना, धोना और छैले (दुल्हे की तरह) बने रहना तथा पूजा के लिये फल, फूल, वनस्पति आदि तोड़ने की व्यवस्था देकर हृदय के दया-भाव को घटा दिया। ✠ ✠ ✠

✠ ✠ ✠ वीर सं० ८८२ में बारह वर्षीय दुकाल पड़ा। उस समय श्री पालिताचार्य शुद्ध संयमी हुए। आप दूर देशों में संयम गुण सहित विचरने लगे। पीछे से कई महापुरुषों ने संथारा कर लिया। कोई एक भवतारी हुए। जो कायर थे वे शिथिलाचारी हुए। भिखारियों से पृथ्वी भर गई। खाने को पूरा अन्न नहीं मिलता। तब श्रावक लोग किवाड़ जुड़े हुए रखते थे। तब श्रावकों और शिथिलाचारियों ने यह नियम बांधा कि द्वार पर आकर धर्मलाभ कहना। इस संकेत से किवाड़ खोलकर आहार वहरा देंगे। अस्तु। ऐसा ही होने लगा। भिखारी लोग इन साधुओं से रास्ते में आहार पानी छीन लेते थे। साधुओं ने सोचा मुँहपत्ती अपनी पहचान है सो इसे उतारकर हाथ में ले लो। बोलते समय मुँह को लगाकर बोलेंगे। इस रीति से उन्हें कुछ दिन आराम मिला। भिखारी इनकी चाल को समझकर फिर आहार लूटने लगे। तब इन्होंने भी

हाथ में डण्डा पकड़ा। डण्डे को देखकर भिखारी डरने लगे। इस भांति इन्होंने धर्म को कलंकित कर डाला। ☼ ☼ ☼

☼☼☼ श्री पालीताचार्य भी देश में पधारे। तब साधुओं का पतित आचार देखकर उन्हें समझाया। परन्तु मिथ्यात्व के उदय न समझे। ☼ ☼ ☼

☼ ☼ ☼ इन्होंने (शिथिलाचारियों ने) अपनी पूजा के लिये चोंतरा, चैत्य, पगल्या, मंदिर, देहरा बंधवाये। अलग-अलग गच्छ बंधी करी। धर्म के ढोंगी बने। ☼ ☼ ☼

☼ ☼ ☼ आचार्य, ऋषि, मुनि, आदि शब्दों को तोड़कर विजय, सूरि, पन्यास, यति आदि शब्दों को जोड़ने लगे। ☼ ☼ ☼

स्थानकपंथी आचार्य हस्तीमलजी ने उक्त दुःस्साहस पूर्ण आक्षेप श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैनाचार्यों आदि पर किया है। इसके विषय में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज को जो भी उचित हो करना चाहिए एवं जैन समाज की एकता के प्रेमी (!) "जैन इतिहास समिति" [लाल भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३] पर विरोध सूचक पत्र भी लिखना चाहिए।

इन्हीं आचार्य द्वारा रचित दूसरी पुस्तक "जैनधर्म का मौलिक इतिहास खंड-१ और २" है, जिसमें भी ऐसी ही साम्प्रदायिक कटुता उभारने वाली और शास्त्र निरपेक्ष मनघडंत बातें भरी पड़ी हैं। इनके इतिहास की कल्पित और झूठ कुछ बातें प्रस्तुत हैं।

सगर चक्रवर्ती के ६० हजार पुत्रों की अष्टापदजी तीर्थरक्षा में मौत हुई थी, इस पर वे लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ संभव है, पुराणों में शताश्वमेधी की कामना करने वाले सगर के यज्ञाश्व को इन्द्र द्वारा पाताल लोक में कपिलमुनि के पास बांधने और

सगर पुत्रों के वहाँ पहुंचकर कोलाहल करने से कपिलऋषि द्वारा भस्मसात् करने की घटना से प्रभावित हो जैनाचार्यों ने ऐसी कथा प्रस्तुत की हो। ☼ ☼ ☼

जैनशासनोन्नति कारक महान राजा श्री संप्रति के विषय में वे लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ श्वेतपाषाण की कोहनी के समीप गांठ के आकार के चिन्हवाली प्रतिमाएँ जैन समाज में प्रसिद्ध रही है और उन सभी का सम्बन्ध राजा संप्रति से स्थापित किया जाता है। ऐसी प्रतिमाओं के अनेक स्थानों पर प्रतिष्ठापित होने का उल्लेख भी किया गया है। मेरी विनम्र सम्मति के अनुसार ये श्वेतपाषाण की प्रतिमाएँ सम्प्रति अथवा मौर्यकाल की तो क्या तदुत्तरवर्ती काल की भी नहीं कही जा सकती। ☼ ☼ ☼

☼ ☼ ☼ जहाँ तक जैन मूर्ति-विधान एवं उपलब्ध पुरातन अवशेषों का प्रश्न है, यह बिना किसी संकोच के कहा जा सकता है कि राजा संप्रति द्वारा निर्मित मंदिर या मूर्तियाँ भारतवर्ष के किसी भी भाग में आज तक उपलब्ध नहीं हो पाई हैं। ☼ ☼ ☼

आर्द्रकुमार के विषय में वे लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ अभयकुमार ने अनार्यदेशस्थ अपने पिता के मित्र अनार्य नरेश के राजकुमार (आर्द्रकुमार) को धर्मप्रेमी बनाने के लिये धर्मोपगरण (?) की भेंट भेजी। ☼ ☼ ☼

करीब २ हजार पृष्ठ के "जैनधर्म का मौलिक इतिहास खंड-१, खंड-२" में ऐसी झूठपूर्ण एवं कल्पित अनेक बातें आचार्य हस्तीमलजी ने लिखी हैं। ऐसे मनघडंत इतिहास को "मौलिक" कैसे कहा जा सकता है? एवं इसको "जैनधर्म का इतिहास" कहना भी असत्य और अन्याय पूर्ण ही है।

आचार्य द्वारा रचित कल्पित इतिहास के उत्तर में मैंने यह मीमांसा द्वारा यत्किंचित् प्रयत्न किया है। प्रबुद्ध और विज्ञजनों को इस विषय में विशेष प्रयत्न करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन समाज में विद्यमान सैंकड़ों सुविहित महासंयमी पंचाचार पालक–प्रसारक आचार्य भगवंतों के पवित्र कर कमलों में मेरी यह तुच्छ रचना समर्पण करता हूं एवं उन पूज्य आचार्य भगवंतों से करबद्ध सविनय निवेदन करता हूं कि स्थानकपंथियों की कुप्रवृत्तियों के प्रति आप कुछ सोचें।

सिद्धान्त महोदधि स्व० आचार्य देव श्रीमद् विजय प्रेम-सूरीश्वरजी महाराज साहब के विद्वान् शिष्यरत्न, १०८ वर्धमान तप-आयंबील की ओली के आराधक, १०८ से भी अधिक शिष्य-प्रशिष्यों के संयममार्गदर्शक और प्रवर्तक, न्यायविशारद मेरे पूज्य गुरुदेव श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज साहब की इस मीमांसा—पुस्तक की रचना में निःसीम कृपा रही है, जिनकी अमिदृष्टि से ही यह मीमांसा पुस्तक प्रस्तुत है।

आगमज्ञ, गीतार्थ मूर्धन्य, पूज्य पन्यास श्री जयघोष विजयजी गणि महाराज साहब के शिष्य रत्न नव्यन्याय के प्रखर विद्वान मुनिराज श्री जयसुन्दर महाराज साहब की ज्ञानदान द्वारा मुझ पर अपार कृपा रही है, जिन्होंने प्रस्तुत मीमांसा पुस्तक की पांडुलिपि को जाँचकर अनेक अत्यंतोपयोगी सूचन करके अपूर्व मार्गदर्शन दिया है, साथ ही साथ इन संयमी महापुरुष ने 'पुरोवचन' स्वरूप प्रस्तावना लिखकर अत्यन्त उपकार भी किया है।

विद्वान् मुनिराज श्री गुणसुन्दर विजयजी महाराज साहब ने भी "दो शब्द" लिखने द्वारा मेरे प्रति अपार वात्सल्य प्रगट करके बहुत उपकार किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का विद्वत्तापूर्ण सम्पादन करने वाले सुश्रावक श्री कपूरचन्दजी जैन (रिटायर्ड तहसीलदार) का सराहनीय सहयोग रहा वे धन्यवाद के पात्र हैं। श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ-मदनगंज एवं दिव्य दर्शन ट्रस्ट ने आर्थिक सहयोग देकर सुकृत लाभार्जन किया है, वह अनुमोदनीय है। मुद्रक सज्जन श्री पाँचूलालजी जैन की सहृदयता भी धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा आत्मार्थी साधक मूर्तिपूजा सम्बन्धित तथ्य सत्य को जाने-माने और आत्मश्रेय साधे ऐसी शुभाशा है।

२-१०-८३
ओसवाली मोहल्ला
श्री श्वे. जैन मंदिर, मदनगंज
(जि०-अजमेर)
राजस्थान

भुवन सुन्दर विजय

पुरोवचन

कदाचित् कोई पूछ ले कि "गगन में सूर्य-चन्द्र चमकते हैं"— इसमें क्या प्रमाण ? शास्त्र में कहां लिखा है ? अनादिकाल से तो वह नहीं था अब यकायक कहां से आ गया ? कौनसे आप्तपुरुषों ने सूर्य-चन्द्र का प्रचार किया ? सूर्य-चन्द्र की मान्यता अधिकतर कितनी प्राचीन होगी ? उन मान्यता में पीछे से क्या-क्या परिवर्तन हुआ ? आदि-आदि ।

अहो ! ये प्रश्न कितने गहरे हैं, कितने कठिन हैं ? कोई सामान्य पुरुष की गुंजाईश है क्या ऐसे प्रश्नों के उत्तर देने की ? ऐसे तात्त्विक (!) प्रश्न करने वालों को तो हाथ जोड़कर यही कहना पड़ेगा, भाई ! तुम्हारे प्रश्न बहुत गहन हैं, कोई सर्वज्ञ ही उनका समाधान कर सकता है ।

ठीक इसी प्रकार १६वीं शताब्दी में जैन शासन में मूर्तिपूजा के गहन विषय में भी ऐसे ही प्रश्नों की परम्परा बन गयी । बहुत से धुरंधर पण्डितों ने उन प्रश्नों के उत्तर देने का साहस किया, लेकिन प्रश्नकर्ता वर्ग को संतोष हो ऐसा उन तात्त्विक (!) और अति गहन (!) प्रश्नों का समाधान कौन करे ? आखिर उन लोगों ने मान लिया—मूर्ति-पूजा गलत है, अशास्त्रीय है, आधुनिक है, उसमें किसी आप्तपुरुषों की सम्मति नहीं है ।

बस ! एक नया सम्प्रदाय बन गया, कुछ नाम रख लिया, कुछ वेष बना लिया, झुकने वाले मिल गये जो झुकाने वालों की तरकीब

या शरम से छूट न पाए। कुछ शास्त्र मान भी लिए, तो कुछ उनकी मनगढंत मान्यताओं के प्रतिकूल थे उनको छोड़ दिया, नये भी शास्त्र कुछ बना लिए। हो गया, भगवान महावीर की मूर्ति को ही छोड़ दिया, नाम लेने के अधिकार को तो बड़े चाव से सुरक्षित रखा।

इतिहास के पन्ने मत उलटाओ, उसमें तो जहां कहीं मूर्ति-पूजा का ही समर्थन मिलेगा। इतिहास भी उन लोगों ने नया ही बना लिया, जिसमें से मूर्तिपूजा को निकाल दिया।

अरे! मूर्तिपूजा! तूने क्या ऐसा अपराध किया था उन लोगों का, जिससे तेरे नाम से वे लोग कांप उठते हैं, एतराजी रखते हैं।

हां! विक्रम की सातवीं शताब्दी तक किसी अनार्य ने भी तेरे खिलाफ एक लफ्ज भी नहीं निकाला था। १३००–१४०० वर्ष पूर्व सबसे पहिले अरब देश में मोहम्मद पैयगम्बर ने तेरा बहिष्कार कर दिया, हां उसके पास समसेरों की बड़ी ताकत थी।

वि० सं० १५४४ के निकटवर्ती उपाध्याय श्री कमलसंयमजी लिखते हैं कि उस पैयगम्बर का अनुयायी फिरोजखान बादशाह दिल्ली के तख्त पर आरूढ़ होकर मन्दिर मूर्तियों को तोड़ने लगा।

इधर उसी काल में लोंकाशाह नामक एक जैन गृहस्थ अपमानित होकर सैयद से जा मिला और उन म्लेच्छों के कुसंग से मूर्तिपूजा का जोर शोर से विरोध करने लगा। जैन शासन में मूर्तिपूजा के खिलाफ विद्रोह करने वाला यह प्रथम ही था। मुसलमानों की ओर से उसको मूर्तिपूजा के खिलाफ प्रचार करने में बहुत सहायता मिल गयी। एक सम्प्रदाय बन गया लोंकागच्छ के नाम से, किन्तु उनके अनुयायियों ने सत्य समझकर फिर से मूर्ति को अपना लिया और लोंकागच्छ में पुनः मूर्तिपूजा पूर्ववत् प्रारम्भ हो गयी। काल के प्रभाव से धर्मसिंह और

लवजी ऋषि ने उस सम्प्रदाय से अलग होकर फिर से लोंकाशाह की भक्ति के नाम पर मूर्तिपूजा के खिलाफ बगावत कर दी। उनका भी सम्प्रदाय चल पड़ा, लोग उनको ढूंढकमत के नाम से पहिचानने लगे जो नहीं जंचा तो आखिर स्थानकवासी या साधुमार्गी ऐसा सुनहरा नाम बना लिया।

मूर्तिपूजा के खिलाफ अनेक प्रश्न उपस्थित किये गये। मूर्तिपूजक सम्प्रदाय की ओर से उन सभी प्रश्नों का अकाट्य तर्कों से और उनके मान्य शास्त्र पाठों से समाधान किया गया, मूर्तिपूजा में चार चांद लग गये। मेघजी ऋषि, आत्मारामजी महाराज इत्यादि अनेक भवभीरु पापभीरु महापुरुषों ने उस बेबुनियाद सम्प्रदाय को छोड़ दिया और मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के पक्के उपासक बन गये।

१६ वीं, १७ वीं, १८ वीं शताब्दियों में हो गये अगणित आचार्य-मुनियों ने मर्तिपूजा में अगणित प्रमाण देते हुए अनेक निबन्धों की रचना की। मूर्तिपूजा के खिलाफ जितने भी प्रश्न हो सकते हैं उन सभी का शास्त्रानुसारी तर्कगर्भित समाधान करने के लिए आज तो प्रचुर मात्रा में साहित्य, पुरातत्त्व, शास्त्रपाठ और प्राचीन साक्ष्य उपलब्ध हैं। तटस्थ बुद्धि से पर्यालोचन करने वालों को शुद्ध तत्त्व निर्णय करने के लिए प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। इतना होते हुए भी मूर्तिपूजा के विद्वेष से उसके खिलाफ लिखने वाले लेखकों की आज कमी नहीं है, यद्यपि ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़-मोड़ किये बिना यह सम्भव ही नहीं है।

मुनि श्री भुवनसुन्दर विजयजी ने ऐसी तोड़-मोड़ करने वाले लेखकों की कुचेष्टा का पर्दा फाश करने का इस पुस्तक में एक सराहनीय कौशलपूर्ण विद्वद्‌गम्य प्रयास किया है इसमें सन्देह नहीं है। इससे तटस्थ इतिहास के जिज्ञासुओं को सत्य-तथ्य की उपलब्धि होगी, भवभीरुवर्ग

की दिशा परिवर्तन की प्रेरणा भी मिलेगी, उत्पथगामियों को सत्यमार्ग का प्रकाश मिलेगा।

मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त और आत्मोन्नति के लिए आवश्यक एवं अनिवार्य है, इस तथ्य की सिद्धि में हजारों प्रमाण मौजूद हैं। मूर्तिपूजा को प्रमाणित करने वाले आचार्यों में उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज का नाम प्रातः स्मरणीय है। स्थानकवासी सम्प्रदाय में भी आज इनके जैन-तर्क भाषा आदि ग्रन्थों को बड़ी प्रतिष्ठा है। प्रतिमाशतक, प्रतिमा स्थापन न्याय, कूप दृष्टान्त विशदी करण, उपदेश रहस्य, षोड़षक टीका इत्यादि ग्रन्थों में जिन अकाट्य प्रमाणों का निर्देश किया है, उनके सामने सभी स्थानकवासियों का मुंह आज तक बन्द ही रहा है। किसी ने भी उसके खिलाफ कुछ भी लिखने का आज तक साहस नहीं किया है।

मूर्तिपूजा के समर्थक और भी कई ग्रन्थ हैं जिनमें ये प्रमुख हैं—वाचक शेखर श्री उमास्वाति आचार्य महाराज कृत पूजा प्रकरण, १४ पूर्वी पूज्य भद्रबाहुस्वामी महाराज कृत आवश्यक नियुंक्ति आदि, आचार्य श्री हरिभद्रसूरि महाराज कृत पूजा पंचाशक प्रकरण, षोड़शक प्रकरण और श्रावक प्रज्ञप्ति टीका एवं ललितविस्तरा ग्रन्थ, आचार्य श्री शांतिसूरिजी महाराज कृत चैत्यवंदन बृहद्भाष्य, अवधिज्ञानी श्री धर्मदासगणि महाराजकृत उपदेशमाला, कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य महाराज कृत योग शास्त्र आदि ग्रन्थ निधि, नवांगी टीकाकार आचार्य श्री अभयदेवसूरि महाराज कृत पंचाशक वृत्ति।

तदुपरान्त श्री ज्ञाता सूत्र, ठाणांग सूत्र, रायपसेणी सूत्र, जीवाभीगम सूत्र, महा प्रत्याख्यान सूत्र, महाकल्पसूत्र, महानिशीथ सूत्र इत्यादि मूल अंग-उपांग सूत्रों में भी मूर्तिपूजा के अनेक उल्लेख भरे पड़े हैं।

महा कल्पसूत्र में गौतम स्वामी के प्रश्नोत्तर में श्री महावीर भगवान ने कहा—"जो श्रमण जिन मंदिर को न जाय उसे बेला या पांच उपवास का प्रायश्चित आता है। उसी तरह श्रावक को भी।" तथा इसी सूत्र में कहा है—जो श्रावक जिन पूजा नहीं मानते वे मिथ्या-दृष्टि हैं। तथा सम्यग्दृष्टि श्रावक को जिनमन्दिर में जाकर चन्दन-पुष्पादि से पूजा करनी चाहिए।

श्री भगवती सूत्र में—तुंगीया नगरी के श्रावकों ने स्नान करके देवपूजन किया यह उल्लेख है—

"ण्हाया कयबलिकम्मा"

श्री उववाई सूत्र में चम्पा नगरी के वर्णन में "बहुलाई अरिहंत चेइयाइं" बहुत से अरिहन्त चैत्यों यानी जिन मंदिर का उल्लेख है।

श्री भगवती सूत्र में चमरेन्द्र के अधिकार में तीन शरण दिखाये हैं—"अरिहंते वा अरिहंत चेइयाणि वा भाविअप्पणो अणगार-स्स वा।" यहां अरिहन्त चेइयाणि का अर्थ अरिहंत की प्रतिमा ऐसा होता है।

श्री उपासकदशांग आगम सूत्र में आनन्द श्रावक के अधिकार में जिन प्रतिमा वंदन का उल्लेख है—

"नो खलु मे भंते ! कप्पइ..........अन्नउत्थिय परिग्गहियाणि अरिहंत चेइयाणि वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा।"

यहां अन्य तीर्थिकों से परिगृहीत जिनप्रतिमाओं को वंदन न करने के नियम से अन्य तीर्थिकों से अपरिगृहीत जिन प्रतिमाओं को वन्दन की सिद्धि होती है।

श्री कल्पसूत्र में भी सिद्धार्थ राजा ने हजारों की संख्या में जिन प्रतिमा पूजन करवाने का "याग" शब्द से उल्लेख है।

श्री व्यवहार सूत्र में जिन प्रतिमा के सन्मुख आलोचना (प्रायश्चित) करने का उल्लेख है।

श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र में निर्जरार्थी को चैत्यहेतुक वैयावच्च करने का आदेश है—"चेइयट्ठे..........इत्यादि" अर्थात् प्रतिमा की हिलना, अवर्णवाद और अन्य आशातनाओं का उपदेश के माध्यम से निवारण करने का साधु को कहा है।

श्री द्वीप सागर पन्नति सूत्र में कहा है कि स्वयंभूरमण समुद्र में जिन प्रतिमा के आकार वाले मत्स्य होते हैं, जिनको देखकर जाति स्मरण होने से तिर्यंच जलचरों को सम्यक्त्व प्राप्ति होती है।

श्री भगवती सूत्र के प्रारम्भ में ही ब्राह्मी लिपि को भी नमस्कार किया है।

इस प्रकार अनेक शास्त्र–आगम सूत्रों से मूर्तिपूजा सिद्ध होती है।

मूर्तिपूजा से लाभ होता है या नहीं—यह तो करनेवाला ही जान सकता है, न करनेवाले को क्या पता ?

हां ! कोई इक्षुरस की मधुरता का चाहे कितना भी अपलाप करे किन्तु उसका आस्वाद करने वाला तो उसके मधुर रस का साक्षात् ही अनुभव करता है। स्थानकवासी और तेरापंथी बन्धु और साधु-संतों से यह अनुरोध है कि वे सब समुदाय में या अकेले एक मास स्वयं जिन-मूर्ति की उपासना करके अनुभव करलें कि उसमें लाभ होता है या नहीं ? हस्त कंकण को कभी दर्पण की जरूरत नहीं होती।

मूर्तिपूजा के समर्थक लेख और निबन्धों से विगत कुछ वर्षों में यह लाभ अवश्य हुआ है कि कुछ कट्टर विरोधी साधुओं--महासतिओं को छोड़कर अधिकांश वर्ग ने मूर्तिपूजा का विरोध करना छोड़ दिया है। अनेक स्थानकवासी सद्गृहस्थों ने मंदिर में दर्शन करना प्रारम्भ कर दिया है, हालांकि वे लोग गांव में पूजा-भक्ति करने में कुछ हिचकाते हैं जरूर किन्तु तीर्थों में जाकर पूजा-भक्ति कर लेते हैं।

मूर्तिपूजा में सावद्य है—हिंसा है इत्यादि जो पहिले घोषणा की जाती थी, वह भी अब तो मन्द होती जा रही है, क्योंकि मूर्तिपूजा में कोई हिंसादि दोष नहीं बल्कि अगणित लाभ ही है, इस तथ्य को शास्त्र, तर्क और अनुभव का पुष्ट समर्थन है।

समय समय पर मूर्तिपूजा के समर्थन में ऐसे लेख और निबंध लिखे ही जा रहे हैं और उसी का यह सत्प्रभाव है कि हजारों लोग पुनः मूर्तिपूजा को आदर से देखने लगे हैं। इस पुस्तक से भी यही लाभ सम्पन्न होगा यह आशा की जाती है। पुस्तक के लेखक मुनि श्री का यह शुभ प्रयत्न निःसन्देह अभिनन्दन के योग्य है।

दि० २–१०–८३
नवसारी
(गुजरात)

मुनि जयसुन्दर विजय

प्रतिमा पूजा की यथार्थता

दो शब्द

जगत के अधिकांश व्यवहारों में जड़पदार्थ में चैतन्य का आरोप कर उनसे प्रीति-अप्रीति होने की सार्वत्रिक स्वीकृति होने और जैनागम में जगह जगह पर परम उपादेय श्री जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा (बिम्ब) से शुभ अध्यवसाय की बात प्रत्यक्ष लिखी होने पर भी "स्थापनाजिन" को स्वीकार न करने की अपनी विपरीत धुन में एकान्त-वाद का आश्रय लेकर स्थानकपंथी स्थापना सत्य का सर्वथा निषेध करते हैं उनका यह दृष्टिकोण सर्वथा अशोभनीय है और एकान्तवादी होने के कारण मिथ्यात्व स्वरूप भी है।

आज से करीब ४०० वर्ष पहिले श्वेताम्बर जैन समाज से मूर्तिपूजा के विरोध के कारण अलग हुए इन लोगों ने सर्वप्रथम प्रतिमा एवं तस्वीर मात्र का ही विरोध किया था। किन्तु बाद में तस्वीर की उपयोगिता समझकर ये लोग अपनी तस्वीर छपवाने-बँटवाने लगे यावत् श्री महावीरस्वामी की मुँहपत्ती बंधी हुई तस्वीर छपवाकर कल्पित स्थानकपंथ का प्रचार करने लगे। इसीप्रकार धन्नाजी, शालिभद्रजी, मेघ कुमारजी आदि मुनियों की मुँहपत्ती बंधी हुई तस्वीर भी वे लोग छपवाने-बँटवाने लगे और अपनी प्रतिष्ठा रखने के लिये "नीचे पड़े की ऊँची टाँग" वाली कहावत की तरह तस्वीर के नीचे लिखवाते हैं कि— "तस्वीर सिर्फ परिचय के लिये"। परमोपकारी तीर्थंकर परमात्मा की

तस्वीर-प्रतिमा-आकृति-चित्र से नफरत और नाराजगी करने वाले वे स्थानकपंथी आज तो अपनी जड़ी-जड़ायी तस्वीर एवं गले में लटकाने का तस्वीर युक्त लोकेट तैयार करवाकर अपने भक्तों को देते हैं।

किन्तु वर्तमान में तो ये लोग अपने गुरु के समाधिमंदिर तक बनवाते हैं। मेरठ में उनके गुरु का स्मारक स्वरूप कीर्तिस्तम्भ भी बना है, जिसके चारों ओर बाग, हरी दूब तथा बिजली आदि जगमगाते हैं, उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि इन स्थानकपंथियों को वैमनस्य सिर्फ भगवान श्री तीर्थंकर परमात्मा की तस्वीर-आकृति-प्रतिमा से ही है, अन्य स्मृतिकारकों से नहीं।

गुरु के समाधि मंदिर, माता-पिता की तस्वीर, सिनेमा के दृश्यों, जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा आदि को देखकर मनुष्य को खुशी-नाखुशी का मानसिक अध्यवसाय होता है। इन सब बातों से यह प्रत्यक्ष सत्य है कि जड़ में भी चेतन पर उपकार या अपकार करने की बड़ी शक्ति है।

जड़ का चेतन पर महान प्रभाव पड़ता है। जैसे वीर पुरुषों की तस्वीर-चित्र-स्टेच्यू देखकर हमारे में वीरता का संचार होता है। क्या साधुवेष या शास्त्र ग्रन्थों को देखकर सिर श्रद्धा से नत-मस्तक नहीं होता है? सिनेमा के परदे पर दिखाये जाने वाले दृश्य जड़ होने पर भी देखने वालों पर उसका गहरा असर पड़ता है। जड़ शराब आत्मा के चैतन्य गुण को नष्ट तक कर देती है। जड़ कर्म पुद्गल ने ही अनन्त शक्तिशाली हमारी आत्मा को बंधन में बांध रखा है। साधुवेष पहिनने मात्र से ही व्यक्ति वंदनीय बन जाता है। उतना ही नहीं छोटी मुँहपत्ती की जगह लम्बी मुँहपत्ती बांधने पर प्रतीक बदल जाने से साधु की पहिचान तक बदल जाती है, यह मूर्तिपूजा का ही एक प्रकार है। कोई स्थानकपंथी साधु अपने मुंह पर लगायी मुँहपत्ती को तोड़ दें तो फिर

क्या उनके भक्तगण उनको वंदनीय मानेंगे ? क्या अन्य स्थानकपंथी मुनि उसको तिखुत्ता के पाठ से वंदन करेंगे ?

राजकीय पुरुषों की समाधि पर पुष्प चढ़ाना, राष्ट्रध्वज को वंदन करना-सलामी देना, देशनेताओं के बावले पर पुष्पमाला अर्पण करना, गुरु के जड़ आसन, पाट आदि को पैर न लगाना, गुरु की तस्वीर युक्त लोकेट बाँटना यह सब मूर्तिपूजा के ही प्रकार हैं।

समवसरण में चतुर्मुख तीर्थंकर का स्वीकार करने वाले शेष तीन प्रतिमा-मूर्तियों का अपलाप कैसे कर सकते हैं ? चारों तीर्थंकर भगवान के समक्ष लोग वन्दन, पूजन सत्कार, सम्मान करते हैं देवेन्द्र, चँवर ढुलाते हैं, सब जीवों को स्व सम्मुख दर्शन-देशनादि मिलता है। इन सब तथ्यों से प्रतिमा-आकृति की महत्ता का सन्न्यायनिष्ट प्रामाणिक सज्जन कैसे अपलाप कर सकते हैं ?

प्राचीन शिलालेखों एवं प्रतिमा पट्टों पर उट्टंकित लेखों से प्रतिमा पूजा की ठोस सिद्धि होती है। जैनागम एवं प्राचीन जैन शास्त्र भी प्रतिमापूजा संबंधित इस सत्य तथ्य को जगह जगह पर पुष्टि करते ही हैं। दशवैकालिक शास्त्र तो दीवार पर चित्रित स्त्री-चित्र को ब्रह्मचारी के लिये खतरनाक बताते हुए उस स्थान में रहने का भी निषेध करता है। यथा—

चित्तभित्तिं न निज्झाए, नारीं वा सु अलंकियं।
भक्खरं पिव दट्ठुणं, दिट्ठिं पडिसमाहरे ॥

[श्री दशवैकालिकसूत्र-अध्ययन ८ (गाथा ५५)

श्री कल्पसूत्र शास्त्र [सूत्र १०३] बताता है कि—

❂ ❂ ❂ तएणं से सिद्धत्थे राया दसाहियाए ठिइवडियाए वट्ट-माणीए सइए अ साहस्सिए अ "जाए" अ दाए अ भाए अ दलमाणे अ। ❂ ❂ ❂

यहां प्राचीन टीकाकार महर्षि ने 'जाए' यानी याग का अर्थ जिनपूजा किया है। श्री आचारांग सूत्र, द्वितीय श्रुतस्कन्ध, तृतीय चूलिका पन्द्रहवें अध्ययन में भगवान श्री महावीर स्वामी के माता-पिता त्रिशलादेवी और सिद्धार्थ राजा को श्री पार्श्वनाथ भगवान की परम्परा के (संतानीय) श्रावक बताये हैं। ऐसी दशा में श्री कल्पसूत्र शास्त्र कथित "जाए" यानी याग शब्द का अर्थ 'जिनपूजा' के सिवा अन्य क्या हो सकता है? याग शब्द में यज् धातु है, जिसका अर्थ देवपूजा भी होता है।

प्रश्न होगा कि—"क्या पत्थर की गाय दूध देने में समर्थ है? हां, पत्थर की गाय केवल पहिचान के लिए अवश्य काम आ सकती है।"—इस प्रश्न का उत्तर यह है कि—"गाय-गाय" ऐसा नाम जाप करने से भी क्या गाय नाम का जाप दूध देने में समर्थ होगा? परमात्मा की मानी गई चैतन्य हीन मूर्ति अगर शुभ ध्यान एवं शुभ भाव में सहायक नहीं मानी जाए तो फिर परमात्मा का जड़ नाम शुभ अध्यवसाय में सहायक कैसे माना जा सकता है? अस्तु।

स्थापना निक्षेप का निषेध करने वाले कोई स्थानकपंथी अगर लोकोत्तर जैनधर्म का इतिहास लिखेगा तो जैसे कोई नादान बालक इधर-उधर टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें निकालकर उसको Map of India (भारत का मानचित्र) कहे और तुच्छ आनन्द मनाये ऐसी ही कुछ अजीब सी बाल चेष्टा आचार्य हस्तीमलजी ने जैनधर्म विषयक इतिहास को कल्पित एवं गलत लिखकर की है, जिससे जैन समाज को सावधान एवं सतर्क रहने की अत्यन्त आवश्यकता है।

मुनिराज श्री भुवनसुन्दर विजयजी महाराज ने ग्राचार्य हस्तीमलजी द्वारा लिखित "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" पुस्तक पर यह मीमांसा लिखी है। इस तर्कपूर्ण ग्रौर शास्त्रीय मीमांसा के विषय में मैं क्या कह सकता हूं? पाठक स्वयं पठन करें, सोचें ग्रौर सत्य समझने में सफलता प्राप्त करें यही शुभाभिलाषा है।

न्यायविशारद, वर्धमान तपोनिधि
ग्राचार्य देवेश
विजय भुवनभानुसूरिजी
महाराज साहब
का
शिष्य
मुनि गुणसुन्दर विजय

चिन्तामणि जैन उपाश्रय
मधुमति
नवसारी (जि० सूरत)
गुजरात
दि० १५-६-८३

कल्पित इतिहास से सावधान

❀ ॐ नमः स्याद्वादवादिने ❀

❀ श्री अर्हते नमो नमः ❀

[प्रकरण–१]

प्राक्कथन

रागद्वेष विजेतारं, ज्ञातारं विश्व वस्तुनः ।
शक्र पूज्यं गिरामीशं, तीर्थेशं स्मृतिमानये ।।

जिसके वंदन, पूजन, सत्कार एवं सन्मान द्वारा राग-द्वेष आदि आन्तरिक शत्रु पर विजय पायी जाती है, ऐसे सुगृहीतनामधेय, सदैव स्मरणीय, इन्द्रपूज्य, स्याद्वादवादी तीर्थंकर परमात्माओं के नाम स्मरण पूर्वक द्रव्य-भाव मंगल करके, वर्धमानतपोनिधि, न्यायविशारद् परमपूज्य गुरुदेव श्रीमद्, विजयभुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज साहब का शिष्य मैं [मुनि भुवन सुन्दर विजय] स्थानकमार्गी आचार्यश्री हस्तीमलजी महाराज द्वारा लिखित "जैन-धर्मका मौलिक इतिहास खंड-१ तथा खंड-२" पर मीमांसा करना चाहता हूं । श्वेताम्बर जैनमत में करीब ४०० साल पहिले ऐसा मूर्तिभंजक हुआ जिसने मूर्तिपूजन के विषय में चैत्यवासी यतिओं की गलती देखकर और मुसलमान सैयद के वचनों में आकर मूर्तिपूजा और मूर्तिमात्र का विरोध बोल दिया और ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया कि सिर दुःखता हो तो उसको काट डालना । इसी परम्परा के एक महाशय आचार्य हस्तीमलजी हैं अतः सज्जनों से प्रार्थना है कि जैनधर्म की रक्षा के सम्बन्ध में मेरी इस बात पर आप सावधान होकर ध्यान दीजिए । आचार्य हस्तीमलजी लिखित 'जैनधर्मका मौलिक इतिहास खंड-१, नया संस्करण जो १९८२ में प्रकाशित हुआ है । खण्ड १, नया संस्करण के मुख पृष्ठ और अन्तिम पृष्ठ पर चौबीस तीर्थंकरों के लांछन चिह्नों की तस्वीर छपी

हुई है। तटस्थ इतिहास लिखने का दावा करने वाले आचार्य ने पुस्तक में तीर्थंकर परमात्मा की आकृति (तस्वीर) कहीं भी नहीं छपवायी है। तीर्थंकरों की भिन्न-भिन्न पहिचान कराने वाले लांछन चित्र देकर और तीर्थंकरों की तस्वीर न देकर आचार्य ने बहुत अनुचित कार्य किया है। किन्तु इस पुस्तक के अन्दर दानदाता गृहस्थ की तस्वीर अवश्य छपवायी है। इतिहास लेखक ने ज्ञानदाता तीर्थंकर परमात्मा की तस्वीर न छपवाकर और द्रव्यदाता गृहस्थ की तस्वीर छपवाकर पुस्तक के प्रारम्भ में ही उल्टी गंगा बहायी है। क्या उत्कृष्ट ज्ञानदाता तीर्थंकर परमात्मा से भी बढ़कर द्रव्यदाता गृहस्थ उपकारी है ? जो कि ज्ञानदाता की तस्वीर इतिहास में नहीं छपवायी और द्रव्यदाता गृहस्थ की तस्वीर छपवायी गयी।

यद्यपि इतिहास में नमस्कार महामंत्र और लोगस्स सूत्र का लिपिमय आकृति द्वारा आचार्य ने द्रव्य मंगल किया है। किन्तु तीर्थंकर की चित्रमय आकृति से द्रव्य मंगल नहीं माना ऐसा फर्क क्यों ? आचार्य को यह भूलना नहीं चाहिए कि तीर्थंकर भगवान के नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव चारों ही निक्षेप मंगल रूप हैं एवं जगत के उपकारक भी हैं।

"नामाकृतिद्रव्यभावैः, पुनतस्त्रिजगज्जनम् ।
क्षेत्रे काले च सर्वस्मिन्नर्हतः, समुपास्महे ।।"

यह त्रिकाल अबाधित सत्य होते हुए भी आचार्य ने इसकी उपेक्षा की है।

ये दो खंड करीब दो हजार पृष्ठों में प्रकाशित हैं। प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान से लेकर चरम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान तक [एक कोड़ा कोड़ी सागरोपमकाल] का इतिहास प्रथम खंड में तथा दूसरे खंड में श्री महावीर भगवान के प्रथम गणधर श्री

गौतमस्वामी तथा प्रथम पट्टधर श्री सुधर्मास्वामी से लेकर पूज्य देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण तक का एक हजार वर्ष का इतिहास दिया गया है। जिसमें आचार्य ने जैनधर्म के इतिहास को अप्रमाणिक एवं झूठा लिखकर अन्याय ही किया है। एक तटस्थ इतिहासकार के कथन में जो सत्यता, विचार में जो निष्पक्षता, सत्य कथन कहने में जो निडरता होनी चाहिए उनका आचार्य में सर्वथा अभाव ही पाया जाता है। जैन धर्म के आचार्य, जैनधर्म विषयक इतिहास में तोड़-मरोड़ करें, झूठ लिखें, अप्रामाणिक वचन प्रस्तुत करें, अन्याय पूर्ण वचन कहें, सत्य तथ्य को छिपाने का जघन्य प्रयास करें या सत्य को अर्धसत्य के रूप में बतायें इससे बड़ा खेद का विषय अन्य क्या हो सकता है ?

यह बात कहते हुए हमको अपार दुःख है कि आचार्य हस्तीमलजी ने अपने "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" ग्रन्थ में कई ऐसी बातें लिखी हैं जो असंगत हैं। वे उनको कहाँ से लाये इनका कुछ *आधार–प्रमाण भी उन्होंने नहीं दिया है*। इसीलिये यह इतिहास नितांत कल्पित एवं अन्याय पूर्ण ही है और खोज-संशोधन करने वाले को कुछ भी प्रेरणा और मार्गदर्शन देने में असमर्थ है। जिनप्रतिमादि विषयक तथ्यों को छिपाकर आचार्य ने केवल सम्प्रदायवाद और एकान्तवाद का ही आश्रय लिया है, जो इतिहास-लेखक के नाते सर्वथा अनुचित है। आचार्य यह बात सर्वथा भूल गये हैं कि स्वोत्प्रेक्षित तर्क और अनुमान के आधार पर प्रामाणिक इतिहास कभी भी नहीं लिखा जाता है। और यदि कोई ऐसा इतिहास लिखे तो ऐसे इतिहास को कौन उचित मानेगा ? इतिहास सत्य पर आधारित होता है, जबकि आचार्य द्वारा लिखित इतिहास को समिति द्वारा स्वमान्यतानुसार निर्माण करवाया गया है। जो स्थानकपंथ को छोड़कर अन्य जैन समाज इससे सहमत नहीं हो सकता, और न इसको जैन धर्म का मौलिक इतिहास कहा जा सकता है।

इस इतिहास में आचार्य हस्तीमलजी ने जगह-जगह असत्य लिखकर जैनधर्मके विषयमें भ्रम फैलाया है। कथानकों के तथ्योंको गलत लिखकर ऐतिहासिक वास्तविकता की ओर से आंखें बन्द करली हैं। इसको जैनधर्म का इतिहास कहना मजाक मात्र है। आचार्य द्वारा इतिहास में जिनमंदिर, जिनप्रतिमा तथा जिनप्रतिमा पूजा के विषय में सत्य तथ्य छिपाने और जैनधर्म की गरिमा को घटाने का निकृष्ट प्रयास किया गया है, जो सर्वथा अस्तुत्य है। स्थानक पंथ व्यामोह में फँसकर, स्वपंथ के तुच्छ स्वार्थवश प्रतिमा आदि अनेक विषयों में जान-बूझकर परिवर्तन कर एवं सत्य बात से दूर रहकर आचार्य ने अपना उल्लू सीधा करना चाहा है। जैनागमों एवं आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य तथा प्राचीन मूर्तियाँ, शिलालेख आदि तथ्यों से जिनप्रतिमापूजा सत्य सिद्ध होते हुए भी अप्रामाणिक बातें लिखकर आचार्य ने सर्वथा झूठ का सहारा लिया है।

स्थानकमार्गी सम्प्रदाय के जानेमाने विद्वान आचार्य हस्तीमलजी महाराज ने तटस्थता, निष्पक्षता एवं सत्य लिखने की प्रतिज्ञा करने के बावजूद भी सत्य पथ से विपरीत चलकर जैनधर्म को भारी क्षति पहुँचायी है। स्थानकमार्गी समर्थ आचार्य इतनी बड़ी अप्रामाणिकता कर सकते हैं यह भी एक सखेद आश्चर्य है। एक प्रामाणिक इतिहासकार को चाहिए कि वह चाहे कोई भी पंथ या आम्नाय में विश्वास करते हों किन्तु वे जिस पंथ या आम्नाय के विषय में लिखें, वह सत्य होना चाहिए। किन्तु आचार्य ने जैनधर्म विषयक इतिहास को असत्य लिखकर जैन समाज में विषैला भ्रम फैलाया है।

हमारा यह स्पष्ट मत है कि कोई भी स्थानकपंथी कभी भी जैनधर्म विषयक इतिहास को सत्य और प्रामाणिक लिख ही नहीं

सकता क्योंकि जैनधर्म के मूल में प्रतिमा पूजा की मान्यता है, जिसमें स्थानकपंथी कदापि विश्वास नहीं करते हैं। अगर आचार्यको जैनधर्म-विषयक इतिहास गलत एवं कल्पित ही लिखना था तो इतिहास लिखने की जरूरत ही क्या थी ? प्रामाणिक इतिहास लिखने की प्रतिज्ञा करना और सत्य छिपाना दोनों एक साथ नहीं हो सकता यह बात आचार्य को भूलनी नहीं चाहिए थी।

सत्यप्रिय जैन समाज को सावधान एवं सतर्क होकर अप्रामाणिक एवं स्वोत्प्रेक्षित तर्क के आधार पर लिखे गये इस इतिहास का अनादर एवं बहिष्कार करना चाहिए। भविष्य में कोई भी लेखक ऐसे किंवदन्ती स्वरूप इतिहास आदि पुस्तक को मुद्रित कर जैनधर्म को आघात पहुचाने की एवं साम्प्रदायिक विष फैलाने की चेष्टा न करें, यही शुभ उद्देश्य लेकर पूज्य गुरुदेव श्री की अनुमति एवं कृपा पूर्वक इस इतिहास की मीमांसा करना हमने उचित समझा है।

संभव है कि उक्त आचार्य हस्तीमलजी आगे भी जैनधर्म विषयक इतिहास के अन्य खंड प्रकाशित करवायेंगे, हम उनसे आशा करते हैं कि वे भविष्य में सत्य का आश्रय अवश्य लेंगे।

आचार्य ने एक अनुचित कार्य यह भी किया है कि उन्होंने स्थानकपंथी मान्यतायुक्त इस ग्रन्थ का नाम—"जैनधर्म का मौलिक इतिहास" रखा है। जो कि सर्वथा अमौलिक होने के साथ–साथ भोले-जनों को भ्रम में डालने वाला है।

तत्त्वप्रिय एवं सत्यप्रिय समाज को ऐसे अमौलिक इतिहास की भर्त्सना करनी चाहिए। मैं पाठकों के समक्ष आचार्य द्वारा रचित इतिहास में से गलत एवं अप्रामाणिक अंशों का उद्धरण करूंगा।

आशा व्यक्त करता हूँ कि सभी सज्जन मेरी इस कृति को स्वीकार करेंगे तथा ऐसी कृतियों का अधिक से अधिक प्रचार प्रसार कर नामधारी आचार्यादि द्वारा होते विषैले प्रचार को रोकने का भरसक प्रयत्न करेंगे।

❖

रायपसेणी जीवाभिगमे, भगवती सूत्रे भाखी जी।
जंबूद्वीप पन्नती ठाणांगे, विवरीने घणुं दाखीजी ॥
वली अशाश्वति ज्ञाता कल्पमां, व्यवहार प्रमुखे आखीजी।
ते जिन प्रतिमा लोपे पापी, जिहां बहुसूत्र छे साखी जी ॥

न्यायविशारद पू० यशोविजयजी महाराज के लघुभ्राता
—श्री पद्मविजयजी महाराज

[प्रकरण–२]

तीर्थंकरों का जन्म महोत्सव

जब भी पुण्यात्मा तीर्थंकर परमात्मा का जन्म होता है, तब छप्पन दिक्कुमारिकाएँ आती हैं, माता एवं पुत्र का सुचिकर्म करती हैं। इन्द्रों का सिंहासन कंपायमान होता है। सौधर्म इन्द्र भगवान को मेरु-पर्वत पर ले जाता है, वहाँ ६४ इन्द्र इकट्ठे होकर अपार भक्तिपूर्वक जन्माभिषेक महोत्सव सानन्द मनाते हैं। बाद में वे देव-देवेन्द्र नंदीश्वर-द्वीप में जाकर, वहाँ स्थित शाश्वत जिनमंदिरों में आठ दिन का भक्ति महोत्सव मनाते हैं।

"जैनधर्म का मौलिक इतिहास", खंड-१, पृ० १५ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

✲✲✲ महान पुण्यात्मा (तीर्थंकर परमात्मा) जब जन्म ग्रहण करते हैं, उस समय ५६ दिक्कुमारियों और ६४ देवेन्द्रों के आसन प्रकम्पित होते हैं। अवधिज्ञान के उपयोग के द्वारा जब उन्हें विदित होता है कि तीर्थंकर का जन्म हो गया है, तो वे सब अनादिकालसे "परंपरागत" दिक्-कुमारियों और देवेन्द्रों के "जीताचार" के अनुसार अपनी अद्भुत दिव्यदेव ऋद्धि के साथ अपनी अपनी मर्यादा के अनुसार तीर्थंकर के जन्मगृह तथा मेरुपर्वत और नन्दीश्वर द्वीप में उपस्थित हो, बड़े ही हर्षोल्लास पूर्वक जन्माभिषेक आदि के रूप में तीर्थंकर का जन्म महोत्सव मनाते हैं। यह संसार का एक अनादि अनन्त शाश्वत नियम है। ✲✲✲

मीमांसा—आचार्य ने अपनी कल्पित कल्पना परम्परागत, जीताचार, अपनी अपनी मर्यादा और शाश्वत नियम इन चार शब्दों से की है। खंड-१ पृ १५ से १९ में तीर्थंकरों का जन्माभिषेक महोत्सव मेरुपर्वत पर देव-देवेन्द्र कैसे मनाते हैं आदि का वर्णन किया है। किन्तु सत्य तथ्य को विपरीत करके यह तो 'जीताचार' है या 'परंपरागत' है ऐसा लिखना नितान्त असत्य एवं एकपक्षी होने के कारण सर्वथा गलत भी है। जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति शास्त्र के तीसरे अधिकार में लिखा है कि जन्माभिषेक महोत्सवमें आनेवाले देव कोई स्वतः अपार भक्तिवश, कोई प्रियतमा देवी की प्रेरणा से, कोई मित्र के वचन से, कोई कौतुक से, कोई इन्द्र की आज्ञा से, तो कोई अपना आचार कर्तव्य समझकर प्रभुजन्म महोत्सव में शामिल होते हैं।

श्री जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति कथित शास्त्रपाठ इस प्रकार है; यथाः—अप्पेगइया वंदणवत्तियं एवं पूयणवत्तियं सक्कार सम्माण दंसण कोउहल्ल अप्पे सक्कस्स वयणुयत्तमाणा अप्पे अण्णमणु यत्तमाणा अप्पेजीयमेयं एवमादि।

अतः मात्र शाश्वत आचार से या परम्परागत रीति से देव-देवेन्द्र मेरुपर्वत पर जन्माभिषेक महोत्सव मनाते हैं, ऐसा लिखने में आचार्य का अनेकान्त दृष्टि एवं प्राचीन जैनागमों के प्रति कृतज्ञता तथा परमात्मा के प्रति भक्ति भाव का सर्वथा अभाव ही व्यक्त होता है। परम्परा से आने का अर्थ तो यही हुआ कि देव-देवेन्द्र बेचारे लाचारी से, मजबूरी से, अनिच्छा से या उदासीनता से आते हैं। किन्तु आचार्य का ऐसा लिखना उन देवों की भक्ति की महिमा पर लांछन लगाना है।

देव-देवेन्द्र नन्दीश्वर द्वीप में जाकर "बड़े हर्षोल्लास के साथ" लगातार आठ दिन तक प्रभुभक्ति महोत्सव मनाते हैं। इस विषय में खंड-१, पृ० ५५५ पर आचार्य लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ इस प्रकार घोषणा करवाने के पश्चात् शक्र और सभी देवेन्द्रों ने नन्दीश्वर द्वीप में जाकर तीर्थंकर भगवान का अष्टान्हिक जन्म-महोत्सव मनाया । "बड़े हर्षोल्लास" के साथ अष्टान्हिक महोत्सव मनाने के पश्चात् सभी देव और देवेन्द्र आदि अपने अपने स्थान लौट गये । ❂ ❂ ❂

मीमांसा —"बडे हर्षोल्लास" शब्द से यह स्पष्ट होता है कि देवों द्वारा जन्माभिषेकादि महोत्सव मनाना परम्परागत या रूढि मात्र ही नहीं है । क्योंकि परम्परागत और रूढि की क्रिया में तो प्राय: हर्षोल्लास का अभाव ही पाया जाता है । अत: आचार्य हस्तीमलजी का परम्परागत, शाश्वत नियम, जिताचार आदि शब्दों का प्रयोग करना नितान्त भ्रान्तिपूर्ण ही है । अगर देव फार्मोलिटी पूरी करते यानी रीत-रश्म निभाने हेतु ही महोत्सव मनाते तो "बड़ा हर्षोल्लास" नहीं आता । सिर्फ खाना पूर्ति ही करनी होती तो नंदीश्वर द्वीप में जाकर लगातार आठ दिन का महोत्सव मनाना और वह भी "बड़े हर्षोल्लास से" यह परम्परा से संभव नहीं हो सकता जैसा कि उनका कहना है ।

देव और देवेन्द्रों के दिल में अपने तारक देवाधिदेव परमात्मा के प्रति इतनी अपार भक्ति है कि भगवान का जन्म-महोत्सव मेरुपर्वत पर भगवान को ले जाकर करने पर भी संतुष्ट न हुए, तो बाद में भगवान को लाकर, माता को सौंपकर सब देवों ने नन्दीश्वर द्वीप में जाकर, वहाँ स्थित शाश्वत जिनमन्दिरों में लगातार आठ दिन का अपार भक्तिवश अष्टाह्निक महोत्सव मनाया । केवल जिताचार, परम्परागत ऐसे तुच्छ शब्दों का प्रयोग करके और नन्दीश्वर द्वीप स्थित शाश्वत जिन मन्दिरों का उल्लेख न करके आचार्य ने इन देव-देवेन्द्रों की अपार भक्ति की महिमा को कम करने का एवं सत् वस्तु "नन्दीश्वरद्वीप स्थित शाश्वत जिन मन्दिरों का" विरोध करने का निर्लज्ज प्रयास किया है, जो सर्वथा अनुचित है ।

प्रभुभक्ति की महिमा देवों के दिल में कैसी बसी है इस विषय में **"श्री पंच प्रतिक्रमण सूत्र"** में पूर्वाचार्य लिखते हैं कि—

येषामभिषेक कर्मकृत्वा, मत्ता हर्ष भरात् सुखं सुरेन्द्राः ।
तृणमपि गणयन्ति नैव नाकं, प्रातः सन्तु शिवाय ते जिनेन्द्राः ।।

अर्थात—जिन तीर्थंकर परमात्माओं का अभिषेक कार्य करके हर्षवश मस्त सुरेन्द्र स्वर्ग सुख को तृणमात्र भी नहीं गिनते, वे जिनेन्द्र भगवान प्रातः काल में शिवसुख [निरुपद्रवता कल्याण] के लिये हों ।

देव-देवेन्द्रों में भगवान के प्रति अपार भक्ति कैसी है कि वे देवलोक के सुखों को प्रभुभक्ति के आगे तृण बराबर भी नहीं गिनते हैं ।

देव-देवेन्द्रों की अपार भक्ति के दृष्टान्त से तो आचार्य को परमात्मा पर अपार भक्ति करना सीखना चाहिए, यह भक्ति तीर्थंकर मामकर्म का बंध कराती है । किन्तु आचार्य की हठधर्मिता देखो कि देव-देवेन्द्रों जैसी भगवद् भक्ति सीखना तो दूर रहा, किन्तु परम्परागत जैसे हल्के शब्दों को लिखकर उन देव-देवेन्द्रों की भक्ति की महिमा घटा रहे हैं और नन्दीश्वर द्वीप स्थित शाश्वत जिन मन्दिर के तथ्य को छिपाने का अशोभनीय प्रयास कर रहे हैं । जिसके दिल में तीर्थंकर परमात्मा की भक्ति का अंश मात्र भी न हो, क्या वह देवों की अपार, भक्ति का मूल्य कर सकता है ? तथा जैनागमों पर सच्ची श्रद्धा का अभाव वाला व्यक्ति क्या नन्दीश्वर द्वीप स्थित शाश्वत जिन मन्दिरों के सत्य को स्वीकार कर सकता है ? सच ही कहा है—

जाके दिलमें झूठ बसत है,
ताको सत्य न भावे ।

भक्त के मन में मुक्ति से भी प्रभुभक्ति का मूल्य अधिक होता है ।
—न्यायविशारद पू० यशोविजयजी उपाध्यायजी

[प्रकरण ३]

शासन रक्षक देव-देवियां

जैनधर्म में शासन रक्षक देव-देवियों की मान्यता मूर्तिपूजा जितनी ही प्राचीन है। चौबीस भगवान के शासनरक्षक देव यक्ष-यक्षिणी होते हैं, जो समय-समय पर आकर जैनशासन की रक्षा एवं जैनशासनोन्नति के कार्यों को करते हैं। उनकी ऐसी अनुमोदनीय प्रवृत्ति की अनुमोदना हेतु प्रतिक्रमण में भवनदेवी श्रुतदेवी आदि का प्रशंसा सूचक काउस्सग्ग भी किया जाता है। इन देव-देवियों के विषय में आचार्य हस्तीमलजी खंड-१, पृ० १८ 'अपनी बात' में लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ प्रत्येक तीर्थंकर के शासन-रक्षक यक्ष-यक्षिणी होते हैं, जो समय समय पर शासन की संकट से रक्षा और तीर्थंकरों के भक्तों की इच्छा पूर्ण करते रहते हैं। ☼ ☼ ☼

मीमांसा—यद्यपि आगमिक तथ्य होते हुए भी स्थानकपंथी एवं आचार्य हस्तीमलजी इन देव-देवियों में विश्वास नहीं करते हैं। फिर भी उक्त तथ्य लिखना भोले जनों को धोखा देना मात्र ही है। खंड-१, पृ० ७८८ पर आचार्य द्वारा "तीर्थंकर परिचय पत्र" बहुत लम्बा-चौड़ा दिया गया है। इसकी प्रशंसा कुछ विद्वानों ने की है। इस परिचय-पत्र में तीर्थंकर भगवान के दीक्षा के साथी, प्रथम तप, प्रथम पारणा दाता, छद्मस्थ काल आदि अनेकविध माहिति संदृब्ध की गयी है। किन्तु इस विशाल परिचयपत्र में चौबीस तीर्थंकरों के यक्ष-

यक्षिणी का परिचय एवं चित्र द्वारा मार्गदर्शन तो दूर नाम तक नहीं दिया है। इसके कारण ही यह परिचय-पत्र आचार्य के पक्षपातित्व का परिचायक मात्र है। वरना प्रसंगोपात् वहां यक्ष-यक्षिणी का नाम एवं परिचय देना अत्यन्त आवश्यक था। इतिहासकार को सत्य हकीकत लिख देना चाहिए किन्तु अभिनिवेश वश आचार्य ने चौबीस तीर्थंकरों के शासन रक्षक देव-देवियों के साथ पक्षपात कर "तीर्थंकर परिचय पत्र" को भी अपूर्ण ही रखा है।

देव-देवियों के विषय में आचार्य दुरंगी नीति रीति अपना रहे हैं। इस विषय में इनके इतिहास में स्वीकार और इन्कार दोनों साथ साथ चलते हैं, जो अनुचित तरीका है। एक अन्य पुस्तक "सिद्धान्त प्रश्नोत्तरी" जो सर्वथा शास्त्र निरपेक्ष होने के कारण कल्पित है, इसमें आचार्य लिखते हैं कि—"देव देवियां कुछ देते नहीं हैं।" किन्तु आगमिक तथ्य इससे बिलकुल विपरीत ही है। क्योंकि आचार्य ही लिखते हैं कि कृष्ण की माता देवकी को कृष्ण द्वारा तेले (अट्ठम) के तप पूर्वक हरिणैगमेषी देव की आराधना करने से गजसुकुमाल नामक पुत्र मिला था। खंड—१, पृ० ३६४ पर यथा—

❂❂❂ देवकी के मनोरथ की पूर्ति हेतु कृष्ण ने तीन दिन का निराहार तप कर देव का स्मरण किया। एकाग्रमन द्वारा किया गया चिन्तन इन्द्र-महेन्द्र का भी हृदय हर लेता है, फलस्वरूप हरिणैगमेषी का आसन डोलायमान हुआ। वह आया। ❂❂❂

❂❂❂ (हरिणैगमेषी) देव ने कहा—देव लोक से निकलकर एक जीव तुम्हारे सहोदर भाई के रूप में उत्पन्न होगा। ❂❂❂

मीमांसा—आचार्य द्वारा कथित उक्त तथ्य से यह सिद्ध होता है कि देव-देवियां कुछ देते हैं। अगर देव की सहायता से पुत्र प्राप्ति

रूप कार्य नहीं होता तो तीन दिन का निराहार तप करके उनको बुलाना व्यर्थ ही था। ऐसी दशा में "सिद्धान्त प्रश्नोत्तरी" किताब में देव-देवियां कुछ देते नहीं हैं ऐसा आचार्य का लिखना सर्वथा झूठ ही रहा।

अपरं च वैरोट्या देवी के विषय में खंड-२ पृ० ५५० पर आचार्य लिखते हैं कि—

✱✱✱ भगवान पार्श्वनाथ के चरणों में भक्ति रखने वाले भक्तों के कष्टों का निवारण करने में वह (वैरोट्यादेवी धरणेन्द्र की महिषी) समय समय पर उनकी सहायता करने लगी। ✱✱✱

मीमांसा—इन तथ्यों से इस बात की सिद्धि होती है कि स्थानकपंथी लोग जो देव-देवियों के विषय में भ्रमपूर्ण बात लिखते मानते हैं, उनका यह भ्रम दूर हुआ होगा।

खंड-१, पृ० ५२४ पर आचार्य लिखते हैं कि—

✱✱✱ श्रद्धालु भक्तों की यह निश्चित धारणा है कि इन (पद्मावती, काली, महाकाली आदि) देवियों (धरणेन्द्र आदि) देवों और देवेन्द्रों ने समय समय पर शासन की प्रभावना की है। इसका प्रमाण यह है कि धरणेन्द्र और पद्मावती के स्तोत्र आज भी प्रचलित हैं। ✱✱✱

मीमांसा—"श्रद्धालु भक्तों की यह धारणा है" ऐसा लिखने का अर्थ तो यही हो सकता है कि अश्रद्धालु होने के कारण आचार्य की ऐसी धारणा नहीं है। यानी स्थानकपंथी आचार्य हस्तीमलजी शासन रक्षक देव-देवियों में अविश्वास करते हैं, किन्तु यह जैनागम और आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य का ही अविश्वास एवं अनादर करने के बराबर है। खंड-२, पृ० ५५० पर आचार्य लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ कहा जाता है कि आचार्य नन्दिल ने वैरोट्या के स्तुति परक "नमिऊण जिणं पासं" इस मंत्र गर्भित स्तोत्र की रचनाकर वैराट्या की स्मृति को चिरस्थायी बनाया। ❂ ❂ ❂

मीमांसा—देव-देवियों की बात स्पष्ट रूप से आगम शास्त्रों में कथित है। फिर भी 'कहा जाता है" ऐसा आचार्य का लिखना अन्याय ही है। श्री भगवती सूत्र में सूत्रकार महर्षि ने भी यक्ष-यक्षिणियों का लिपिबद्ध मंगल किया है।

द्वादशांगी के पांचवें अंग भगवती सूत्र के विषय में आचार्य हस्तीमलजी खण्ड-२ पृ० १७० पर लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ द्वादशांगी के पांचवें अंग "व्याख्या प्रज्ञप्ति" [अपरनाम श्री भगवती सूत्र] की आदि में "पंचपरमेष्ठी नमस्कार मंत्र", "णमो बंभीए लिवीए" और णमो सुयस्स पद से मंगल किया है और अन्त में संघ स्तुति के पश्चात् गौतमादि गणधरों, भगवती व्याख्या प्रज्ञप्ति, द्वादशांगी रूप गणिपिटक, श्रुतदेवता, प्रवचनदेवी, कुंभधर यक्ष, ब्रह्मशांति, वैरोट्यादेवी, विद्यादेवी और अंतहुडी को नमस्कार किया गया है। ❂ ❂ ❂

मीमांसा—यहां स्वयं सूत्रकार महर्षि ने अन्तिम मंगल के रूप में कुम्भधर यक्ष, वैरोट्यादेवी आदि को नमस्कार किया है। इतना ठोस आगम वचन होते हुए भी आचार्य का पक्षपात देखो कि देव-देवियों के विषय में "ऐसा माना जाता है", "ऐसा कहा जाता है" ऐसे घटिया शब्दों का प्रयोग करके अप्रमाणिकता कर रहे हैं। महान जैनाचार्य श्री नन्दिल के विषय में आगमिक तथ्य सत्य होते हुए भी "कहा जाता है" ऐसा आचार्य लिखते हैं, जो आचार्य के अनिश्चित चित्त का परिचायक है। किन्तु ऐसी अनिश्चितता और अप्रमाणिक बातें तो इस कल्पित इतिहास में जगह जगह लिखी मिलती हैं। खंड–२, पृ० ६४६ पर आचार्य लिखते हैं कि—

भयहर स्तोत्र भी आचार्य मानतुंग की रचना मानी जाती है।

मीमांसा—'मानी जाती है' ऐसा संदिग्ध लिखकर आचार्य अपने इतिहास को कौड़ी की कीमत का कर रहे हैं क्योंकि इतिहास के लेखन में सत्य कथनों को ऐसे संदिग्ध रूप में लिखना दोषपूर्ण होता है।

शासन रक्षक देव-देवियां अवसर पर आकर तीर्थंकर के भक्तों के संकट निवारण करते हैं, इस विषय में श्री स्थूलिभद्र महामुनि की बहिन साध्वी यक्षा की बात आगम प्रसिद्ध है, जो शासन रक्षक देवी की सहायता से श्री सीमंधर भगवान के पास गयी थी। इस विषय में खंड-२, पृ० ७७९ पर आचार्य लिखते हैं कि—

यदि कोई कहदे कि (भाई साधु श्रीयक की मौत के विषय में) यक्षा निर्दोष है, तभी मैं (यक्षा) अन्न-जल ग्रहण करूंगी अन्यथा नहीं।

अन्ततोगत्वा शासनाधिष्ठात्री देवी की संघ ने आराधना की और दैवी सहायता से आर्या यक्षा महाविदेह क्षेत्र में श्रीमंदरस्वामी के समवसरण में पहुँची।

दैवी सहायता से आर्या पुनः लौट आयी।

मीमांसा—उक्त बात से यह स्पष्ट है कि देव-देवियां जैन-शासन की सहायता करते हैं। बड़े बड़े आचार्यों ने भी उनकी भक्ति की अनुमोदनार्थ स्तोत्र रचे हैं। उनके शासन सेवा की अनुमोदना निमित्त *प्रतिक्रमण में कायोत्सर्ग भी किया जाता है। जिन प्रतिमा की तरह* देव-देवियों की प्राचीन मूर्तियां भी जमीन में से निकलती हैं, इस ध्वंसावशेष प्रतिमा की चौकियों पर उट्टंकित लेख से यह भी निर्णय होता है कि पूर्वाचार्यों ने ही इन शासन रक्षक देव-देवियों की मूर्ति की

प्रतिष्ठा करवायी थी । श्री भगवती सूत्र आदि आगम शास्त्रों में भी देव-देवियों की बात आती है । आदि अनेक तथ्य होते हुए भी आचार्य हस्तीमलजी यक्ष-यक्षिणी के विषय में प्रकाश में आना पसन्द नहीं करते हैं, यह उनका गहरा पक्षपात ही है ।

आगरा लोहामंडी से छपी 'मंगलवाणी' किताब, संकलनकर्ता स्थानकपंथी अखिलेशमुनि ने पृ० ३५४ (ग्यारहवाँ संस्करण) पर "घंटाकर्ण महावीर का मंत्र" दिया है, और इसको २१ बार गिनने पर भूत-प्रेतादि पीडा नाश होती है ऐसा लिखा है । जब स्थानकपंथियों को "घंटाकर्ण महावीर" के विषय में पूछते हैं तब वे इस विषय में कुछ नहीं बताते हैं । किन्तु इस "घंटाकर्ण महावीर मंत्र" से भी स्थानकमार्गी द्वारा देव-देवियों के तथ्य की पुष्टि तो अवश्य होती ही है । फिर सत्य-तथ्य को स्वीकारने में इन्कार क्यों ?

अनेकान्त का समुचित बोध रहित सम्यग्दर्शन द्रव्य सम्यग्दर्शन है ।

—पू० यशोविजयजी उपाध्याय महाराज

अत्यन्त प्राचीन भव्य जिन प्रतिमा जो
जरमनी के संग्रहालय में है ।

[प्रकरण-४]

तीर्थंकरों की माता के गर्भ में भी पूजनीयता

जब जगत्वंद्य तीर्थंकर परमात्मा माताकी कुक्षि में आते हैं तब भी पूजनीय होते हैं। वैसे माता की कुक्षि में आये हुए तीर्थंकर द्रव्य तीर्थंकर हैं, फिर भी वे देवेन्द्रों के भी पूजनीय बनते हैं। तो फिर "देवा वि तं नमंसंति" इस आगमवचनानुसार जन सामान्य के भी पूजनीय बनें इसमें आश्चर्य ही क्या ? तीर्थंकर परमात्मा माता की कुक्षि में आते हैं तब देवेन्द्र सिंहासन पर से नीचे उतर जाता है, उत्तरासंग करके अपने सिंहासन से सात-आठ कदम आगे चलकर भगवान जिस दिशा में हों उसी दिशा में प्रणाम करके भगवान की स्तुति स्वरूप "शक्रस्तव" [नमुत्थुणं] सूत्र बोलता है। उक्त बात श्री कल्पसूत्र शास्त्र में १४ पूर्वधर श्री भद्रबाहुस्वामी ने भी कही है। आचार्य हस्तीमलजी खंड १, पृ० १५ पर लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ सर्व प्रथम उन्होंने (चौसठ इन्द्रों ने) सिंहासन से उठ प्रभु जिस दिशा में विराजमान थे उस दिशा में उत्तरासंग किये, सात-आठ कदम आगे जा प्रभु को प्रणाम किया। ❂ ❂ ❂

मीमांसा—श्री कल्पसूत्र शास्त्र में कहा है कि शक्र 'नमुत्थुणं' सूत्र का पाठ बोलता है। फिर भी मनमानी करके आचार्य ने शक्रस्तव के कथन को छिपा ही लिया है, क्योंकि माता की कुक्षि में आये हुए तीर्थंकर द्रव्य तीर्थंकर हैं, उनको भी आदिकर, तीर्थंकर आदि ३३

विशेषणों से श्री कल्पसूत्रशास्त्रकार द्वारा समादर किया गया है, यह बात आचार्य को स्वमान्यता विरोधक होने से काँटे की तरह चुभनेवाली है, अतः उन्होंने अप्रमाणिकता पूर्वक श्री कल्पसूत्र शास्त्र कथित 'नमुत्थुणं' का पाठ छिपाया है। किन्हीं जीवों को मिथ्यात्व का उदय ही इतना अभिनिवेश पूर्ण होता है कि वह सत्य को सत्य रूप में लिखने तक नहीं देता।

पूज्य तीर्थंकर प्रत्येक अवस्था में पूजनीय-वंदनीय हैं, इस विषय में भावि तीर्थंकर श्री महावीर भगवान के पूर्व भवधारी मरीचि को प्रथम चक्रवर्ती भरत द्वारा प्रणाम करना शास्त्र प्रसिद्ध दृष्टान्त है। भरत चक्रवर्ती के उत्तर में श्री ऋषभदेव भगवान ने कहा कि—"हे भरत ! तेरा पुत्र मरीचि भावि २४ वाँ तीर्थंकर होगा। तब जाकर भरत ने त्रिदण्डी तापस वेश धारक मरीचि को प्रणाम किया। उक्त बात को खंड १, पृ० ११६ पर आचार्य भी व्यक्त करते हैं, यथा—

✪ ✪ ✪ मरीचि के पास जाकर उसका अभिवादन करते हुए (भरत) बोले—"मरीचि ! तुम तीर्थंकर बनोगे इसलिये तुम्हारा अभिवादन करता हूं। मरीचि ! तेरी इस प्रवज्या को एवं वर्तमान जन्म को वंदन नहीं करता हूँ, किन्तु तुम जो भावी तीर्थंकर बनोगे इसलिये मैं वंदन करता हूं।" ✪ ✪ ✪

मीमांसा—भावि तीर्थंकर को भी सम्यग्दृष्टि भरत वंदन करते हैं, इस तथ्य से यह सत्य सिद्ध होता है कि कोहिनूर हीरा भले चाहे खान में पड़ा हो, कोहिनूर ही है। वैसे ही तीर्थंकर परमात्मा भी सदैव वंदनीय एवं पूजनीय हैं।

शास्त्रीय कथन होते हुए भी द्रव्य तीर्थंकर को पूजनीयता में अविश्वास करने वाले आचार्य अपनी नाराजगी प्रगट करते हुए कहते हैं कि—

❋❋❋ भरत द्वारा भावि तीर्थंकर मरीचि को प्रणाम करना मूल जैनागमों में दृष्टिगोचर नहीं होता है, किन्तु कथाग्रन्थों में ऐसी बात लिखी है। ❋❋❋

किन्तु ऐसी अप्रमाणिक बात लिखने वाले आचार्य हस्तीमलजी को यह बताना चाहिए कि श्री महावीर स्वामी के जीव ने किस जगह, किस समय कौन से कारण नीच गोत्र का बंध किया था, जिसके प्रभाव से श्री महावीर स्वामी के भव में उनको ब्राह्मणी की कुक्षि में पैदा होना पड़ा था।

सुभूम चक्रवर्ती, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, चन्द्रगुप्त चाणक्य का कथानक, सगर चक्रवर्ती को वैराग्य, श्री महावीर स्वामी के सत्ताईस भव, नंदवंश की स्थापना आदि अनेक बातें आगम ग्रन्थों में नहीं होते हुए भी आचार्य ने कथा ग्रन्थों के सहारे ही लिखी हैं। फिर इस बात में संदेह क्यों?

आर्या चंदनबाला के विषय में खंड १, (पुरानी आवृत्ति) पृ० ३४५ पर आचार्य लिखते हैं कि—

❋❋❋ चन्दना ने जब कुछ समय बाद यौवन में पदार्पण किया तो उसका अनुपम सौंदर्य शतगुणित हो उठा। उसकी कज्जल से भी अधिक काली केशराशि बढ़कर उसकी पिण्डलियों से अठखेलियां करने लगी। ❋❋❋

मीमांसा—आर्या चंदनबाला के विषय में उक्त बात इतिहासकार ने कौन से मूलागम के आधार पर लिखी है, यह प्रामाणिकता पूर्वक कहना चाहिए एवं नंदवंश की स्थापना के अवसर पर खंड २, पृ० २६८ पर आचार्य लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ उदायी का राज छत्र भी स्वतः ही नन्द के मस्तक पर तन गया और नन्द के दोनों ओर मन्त्राधिष्ठित वे दोनों चामर स्वतः ही अदृश्य शक्ति से प्रेरित हो, व्यजित होने लगे। ❂ ❂ ❂

मीमांसा—उक्त बात भी इतिहासकार आचार्य ने कौन से मूलागम में से लिखी है? इतना ही नहीं आचार्य के माने हुए ३२ मूलागम या एकादश अंग के मूलपाठ में कहीं भी सामायिक की विधि, प्रतिक्रमण की विधि, पोसह की विधि का उल्लेख नहीं है। तो फिर सामायिक, प्रतिक्रमण और पौषध आदि की विधि वे कौन से आधार पर कर रहे हैं? सच तो यह है कि आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य भी हमारे लिये उतना ही विश्वसनीय है जितना आगमशास्त्र। क्योंकि आगमेतर जैन साहित्य के रचयिता वे जैनपूर्वाचार्य हैं जो पंचमहाव्रत धारक एवं उत्सूत्रभाषण के वज्रपाप से डरने वाले भवभीरु थे।

कलिकाल सर्वज्ञ पूज्यपाद् श्री हेमचन्द्राचार्य महाराज रचित "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" में भरत ने भावि तीर्थंकर मरीचि को प्रणाम किया था ऐसी बात आती है और "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" विश्वसनीय है इस बात को आचार्य स्वयं ही खंड २, पृ० ५६ पर कहते हैं—

❂ ❂ ❂ यह है आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि द्वारा विरचित त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र का उल्लेख जो पिछली आठ शताब्दियों से भी अधिक समय से लोकप्रिय रहा है। ❂ ❂ ❂

मीमांसा—बहुत सी ऐसी बातें हैं जिसको प्रमाणित करने के लिये आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य का ही एकमात्र प्रमाणिक सहारा और सच्चा आधार है। फिर भी मरीचि को भरत द्वारा किये गये प्रणाम के विषय में आचार्य का लिखना कि—"ऐसी कोई बात आगमों

में नहीं है" बिल्कुल अनुचित एवं कृतघ्नता का सूचक है। यह कैसा गूढाचार है कि इतिहास की पुष्टि में सहारा लेना त्रिषष्ठि शलाका पुरुष आदि चरित्रों का और स्थानकपंथी स्वमान्यता से विरोध आये वहाँ बोल उठना कि मूलागमों में ऐसी कोई बात आयी नहीं है ! कैसी हास्यास्पद बात आचार्य कर रहे हैं, गुड़ खाना और गुलगुलों से परहेज !

जैनागम एवं आगमेतर जैन ग्रन्थों में नाम एवं स्थापना की तरह द्रव्य तीर्थंकर भी वंदनीय माने गये हैं। यह सत्य तथ्य एक प्रामाणिक इतिहासकार को स्वीकार करना चाहिए।

अभवि एवं दुर्भवि को जैनागम एवं आगमेतर जैन साहित्य कथित बात नहीं सुहाती है, जैसे उल्लू को प्रकाश।

[प्रकरण-५]

तीर्थंकर के बारह गुण

राग-द्वेष विजेता तीर्थंकर श्री अरिहंत परमात्मा के बारह गुणों में कुछ कपट का सहारा लेकर आचार्य हस्तीमलजी खंड १, पृ० ६१ पर इस प्रकार लिखते हैं कि—

✲✲✲ (१) अनन्तज्ञान (२) अनंतदर्शन (३) अनंत चारित्र यानी वीतराग भाव (४) अनंतबल-वीर्य (५) अशोकवृक्ष (६) देवकृत पुष्पवृष्टि (७) दिव्यध्वनि (८) चामर (९) स्फटिक सिंहासन (१०) छत्रत्रय (११) आकाश में देवदुन्दुभि और (१२) भामन्डल।

पांच से बारह तक के आठ गुणों को प्रातिहार्य कहा गया है। भक्ति-वश देवों द्वारा यह महिमा की जाती है। ✲✲✲

मीमांसा—पांच से बारह तक के आठ गुणों को देवकृत कहने पर भी छट्ठे गुण में "देवकृत पुष्पवृष्टि" ऐसा लिखना आचार्य की अप्रमाणिकता ही है। "देवकृत पुष्पवृष्टि" लिखने पर तो देवकृत अशोकवृक्ष, देवकृत दिव्य ध्वनि ऐसा भी लिखना चाहिए। फिर "पांच से बारह तक के आठ गुणों को प्रातिहार्य कहा गया है, भक्तिवश देवों द्वारा यह महिमा की जाती है।" ऐसा लिखने की आवश्यकता नहीं थी, फिर भी क्यों लिखा ?

उक्त बारह गुणों के विषय में "देवकृत अशोकवृक्ष" न लिखकर और "देवकृत पुष्पवृष्टि" ऐसा लिखने के पीछे आचार्य का अभिप्राय यह रहा होगा कि देवों द्वारा भगवान के समवसरण में अचित (निर्जीव) पुष्पों की वृष्टि होती है। जबकि पूर्वाचार्यों ने सचित पुष्पवृष्टि का भी होना शास्त्रों में लिखा है। "तुष्यतु दुर्जन न्यायेन" यह मान भी लिया जाए कि अहिंसा धर्म के प्रवर्तक तीर्थंकर परमात्मा की उपस्थिति में सचित पुष्पों की वृष्टि (वर्षा) न करके देवगण अचित पुष्पों की वृष्टि करते थे, जो कि अहिंसक हैं, फिर भी पुष्पवर्षा से वायुकाय की हिंसा तो अवश्य होती ही होगी ? इसका जबाब आचार्य क्या देंगे ?

और चँवर ढुलाने आदि में वायुकाय के जीवों की हिंसा भी विचारणीय है।

आचार्य ने बारह गुणों का वर्णन अपने इतिहास में नहीं किया है। रथ मुसल युद्ध चंद्रगुप्त चाणक्य का कथानक, ब्रह्मदत्त और सुभूम आदि के विषय में फालतू लम्बी चौड़ी बातें लिखने वाले आचार्य ने अत्यन्त उपादेय तीर्थंकर परमात्मा के गुणों का वर्णन नहीं किया है यह सखेद आश्चर्य की बात है। इसके साथ एक बात और भी है कि गुण-गुणी में रहते हैं, जैसे कि तीर्थंकर परमात्मा में ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि गुण रहते हैं। किन्तु सिंहासन, छत्र, चंवर, अशोकवृक्ष जो गुणी में नहीं रहते हैं फिर भी इनको तीर्थंकर परमात्मा (गुणी) के गुण क्यों कहा है ? इस प्रकार के स्पष्टीकरण की अत्यन्त आवश्यकता थी। जिसकी अपूर्णता ही अपने इतिहास में आचार्य ने रखी है जो उनकी अनभिज्ञता की भी सूचक मानी जाएगी।

स्वत: सिद्ध तथ्यों जैसे कि महावीर भगवान का गर्भापहार, भरतचक्री की षट् खंड साधना, ऋषभदेव भगवान का ४०० दिन का

व्रत, पंचमी की चौथ आदि विषयों में अनावश्यक पिष्टपेषण करके "जैन धर्म का मौलिक इतिहास" नामक ग्रंथ में थोथे का कद बढ़ाने वाले आचार्य ने तीर्थंकर के परम उपादेय बारह गुणों का वर्णन नहीं किया है, यह बात उनकी तीर्थंकर परमात्मा के प्रति न्यूनभक्ति का परिचय कराती है।

अन्य बात यह भी है कि देवों की चँवर ढुलाने एवं पुष्पवृष्टि आदि प्रवृत्ति का आप्त भगवान ने काम-भोग की तरह निषेध भी नहीं किया है। और ऐसी आडम्बर युक्त प्रवृत्ति में लगने की बजाय देवता शांतचित्त से धर्मदेशना ही क्यों नहीं सुनते ? ऐसे प्रश्नों का स्पष्टीकरण भी आवश्यक था। इसकी भी अपूर्णता इस इतिहास में पायी गयी है। इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि आचार्य को अन्य बातों में जितनी रुचि है इतनी रुचि अरिहंत परमात्मा के गुणगान में नहीं है। आगे हम लिख चुके हैं कि आर्या चन्दनबाला के विषय में आचार्य लिखते हैं कि—

✲✲✲ चंदना ने जब कुछ समय बाद यौवन में पदार्पण किया तो उसका अनुपम सौंदर्य शतगुणित हो उठा। उसकी कज्जल से भी अधिक काली केशराशि बढ़कर उनकी पिण्डलियों से अठखेलियां करने लगी। ✲✲✲

मीमांसा—ऐसी अनावश्यक बातों की रुचि कम होने पर ही तीर्थंकर परमात्मा के बारह गुणों का गुणगान हो सकता है। अवसर प्राप्त अत्यन्त उपादेय तीर्थंकर के बारह गुणों का गुणगान न करना, गुण-गुणी में रहते हैं फिर अष्टप्रातिहार्य बाहर रहते हुए भी अरिहंत के गुण कैसे ? भगवान ने उनकी उपस्थिति में होती दिव्यध्वनि, पुष्पवृष्टि आदि का निषेध क्यों नहीं किया है ? ऐसे अनेक प्रश्नों को अस्पष्ट

रखकर आचार्य ने जैनधर्म के तीर्थंकरों के इतिहास के विषय में अपनी अनभिज्ञता एवं अज्ञता सूचित की है। तथ्य तो यह है कि वैतनिक पंडितों के बल बूते पर इतिहास की रचना करवा लेना आसान है किन्तु बिना गुरुगम ऐसे प्रश्नों का रहस्य पाना आसान नहीं है।

आश्रवों को हेय-त्याज्य कहकर छुड़वाने वाले आप्त तीर्थंकरों ने देवों द्वारा की गयी दिव्यध्वनि, पुष्पवृष्टि, चँवर ढुलाना आदि प्रवृत्ति को त्याज्य नहीं कहा है, अन्यथा काम भोग की तरह उनका भी आप्त भगवान अवश्य निषेध करते।

—न्यायविशारद पूज्य यशोविजयजी उपाध्याय

[प्रकरण–६]

श्री ऋषभदेव का निर्वाण और पावन दाढ़ा

तीर्थंकर परमात्मा का निर्वाण होता है तब देव-देवेन्द्र आते हैं, भगवान के पावन देह को स्नान कराकर चन्दनादि का विलेपन करते हैं। भगवान के देह को चन्दन की चिता पर जलाया जाता है। बाद में भगवान की पावनदाढ़ा देव देवलोक में ले जाते हैं। देव भगवान के शरीर के अवशेषों का आदर एवं पूज्य भाव से सेवा-पर्युपासना करते हैं। अष्टापदगिरि पर प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान का निर्वाण हुआ। इस विषय में आचार्य हस्तीमलजी खंड १, पृ० १३१ पर लिखते हैं कि—

भगवान ऋषभदेव का निर्वाण होते ही सौधर्मेन्द्र शक्र आदि ६४ देवेन्द्रों के आसन चलायमान हुए। वे सब इन्द्र अपने अपने विशाल देव परिवार और अद्भुत दिव्य ऋद्धि के साथ अष्टापद पर्वत के शिखर पर आये। देवराज शक्र की आज्ञा से देवों ने तीन चिताओं और तीन शिविकाओं का निर्माण किया। शक्र ने क्षीरोदक से प्रभु के पार्थिव शरीर को और दूसरे देवों ने गणधरों तथा प्रभु के शेष अन्तेवासियों के शरीरों को क्षीरोदक से स्नान करवाया। उन पर गोशीर्ष चंदनका विलेपन किया।

शक्र की आज्ञा से अग्निकुमारों ने क्रमशः तीनों चिताओं में अग्नि की विकुर्वणा की और वायुकुमार देवों ने अग्नि को प्रज्वलित किया।

❂ ❂ ❂ सभी देवेन्द्रों ने अपनी अपनी मर्यादा के अनुसार प्रभु की दाढ़ों और दांतों को तथा शेष देवों ने प्रभु की अस्थियों को ग्रहण किया। ❂ ❂ ❂

मीमांसा—उक्त कथन में आचार्य ने "मर्यादा के अनुसार" ऐसा लिखकर कपट करना चाहा है क्योंकि सिर्फ "मर्यादा के अनुसार" लिखना एकान्तवाद होने से अनुचित है। स्थानकमार्गी अमोलक ऋषि कृत जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति के पृ० १०० पर लिखा है कि—

❂ ❂ ❂ कितनेक देव तीर्थंकरों की भक्ति के वश से, कितनेक अपना जीताचार समझ के और कितनेक ने धर्म जानकर (दाढ़ों को) ग्रहण किया। ❂ ❂ ❂

शास्त्र पाठ यथा—

❂ ❂ ❂ "केई जिण भत्तिए केई जीयमेयंतिकट्टु केई धम्मोत्ति-कट्टु गिण्हंति" ❂ ❂ ❂

मीमांसा—'जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति' आगमानुसार देव तीर्थंकर की भक्तिवश और धर्म समझकर भी दाढ़ों को ग्रहण करते हैं। इसप्रकार का आगमिक तथ्य होते हुए भी सिर्फ "मर्यादानुसार" लिखने में आचार्य की एकान्तवादी हठधर्मिता ही माननी चाहिए। आचार्य को यह भूलना नहीं चाहिए कि यह लौकिक धर्मकरणी नहीं है, किन्तु लोकोत्तर धर्म करणी है।

तथा इतिहासकार आचार्य ने चालाकी पूर्वक तीर्थंकर परमात्मा की दाढ़ों वंदनीय एवं पर्युपासनीय हैं और अस्थियाँ भी पूजनीय हैं इस सत्य तथ्य को भी गुप्त रखा है। स्थानकपंथी अमोलक-ऋषि कृत श्री राजप्रश्नीय सूत्र का हिन्दी अनुवाद पृ० १६० पर लिखा है कि—

उन वज्रमय गोल डब्बों में बहुत जिनकी दाढ़ों स्थाप रखी हैं, वे दाढ़ों सूरियाभ देव के, और भी बहुत से देव-देवियों के अर्चन या वन्दन-पर्युपासनीय हैं।

मीमांसा—इतिहासकार आचार्य ने उक्त तथ्य को नहीं लिखने में ही अपना श्रेय समझा है, जो अनुचित है। तीर्थंकर भगवान की दाढ़ों वंदनीय एवं पर्युपासनीय है और अस्थियां भी पूजनीय हैं। देव भगवान के शरीर का यत् किंचित् अवयव हाथ लगता है, उनको भी वे पूज्यदृष्टि से पूजकर अपना कल्याण समझते हैं। श्री राजप्रश्नीय सूत्र लिखित तथ्य को छिपा करके आचार्य ने अप्रमाणिकता की है।

तीर्थंकर परमात्मा की परम पावन आत्मा इस पावन दाढ़ा में भी रही थी इसके कारण यह शान्तरस से ऐसी भावित हो गयी है कि दो देव के बीच लड़ाई हो जाने पर इस पवित्र दाढ़ा के अभिषेक जल को उन पर छिड़कने से वे दोनों देव शान्त हो जाते हैं। अन्य देव भी भगवान की हड्डियों एवं अन्य अर्धजलित अंगों को ले जाते हैं, उनका भी अभिषेक आदि करते हैं। तीर्थंकर परमात्मा की भक्ति का यह भी एक प्रकार है ऐसा शास्त्रीय उल्लेख होते हुए भी दाढ़ों के विषय में पर्युपासना तथा वंदन की बात आचार्य ने अपने इतिहास में कोशों दूर छोड़ दी है जो सर्वथा अनुचित ही है।

दुर्लभ मनुष्य जन्म प्राप्त करने के बाद तत्त्वदर्शीको सूत्रोक्त-नीति के अनुसार वीतराग भाषित धर्म की आराधना करनी चाहिए। मनमानी कल्पना पर किये हुए धर्म की फूटी कौड़ी की भी कीमत नहीं है।

—१४४४ ग्रन्थ रचयिता पूज्य हरिभद्रसूरिजी महाराज

[प्रकरण–७]

श्री अष्टापद गिरि पर जिन मंदिर

प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान का अष्टापद पर्वत पर निर्वाण हुआ, वहाँ उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती ने सोने के मंदिर बनवाकर चौबीसों भगवान के शरीर की ऊँचाई के प्रमाण रत्न की प्रतिमा चार, आठ, दस और दो के क्रम से चारों दिशाओं में विराजमान की थीं।

श्री ऋषभदेव भगवान की निर्वाण भूमि अष्टापद पर्वत के विषय में आचार्य लिखते हैं कि—

उन चार प्रकार के देवों ने क्रमशः प्रभु की चिता पर, गणधरों की चिता पर और अणगारों की चिता पर तीन चैत्यस्तूप का निर्माण किया।

मीमांसा—प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान के निर्वाण स्थल पर देवों ने चैत्यस्तूप का निर्माण किया किन्तु श्री अजितनाथ, श्री सम्भवनाथ आदि तीर्थंकरों की निर्वाण भूमि पर देवों ने चैत्यस्तूप का निर्माण किया कि नहीं ? इस बात को आचार्य ने अस्पष्ट ही रखी है। आचार्य श्री मलयगिरिजी के कथनानुसार भरत ने चैत्यस्तूप का निर्माण करवाया था। खंड १, पृ० १३१ पर आचार्य हस्तीमलजी पूज्यपाद श्री मलयगिरि महाराज के उद्धरण पूर्वक लिखते हैं कि—

✡✡✡ तथा भगवद्देहादिदग्धस्थानेषु भरतेन स्तूपाः कृता, ततो लोकेपि ततः आरभ्य मृतकदाहस्थानेषु स्तूपाः प्रवर्तन्ते। [आवश्यक मलयगिरि] ✡✡✡

अर्थात्—भगवान के शरीर का जहाँ दाह हुआ था, उसी स्थान पर भरत ने स्तूप बनवाया, तब से लोक में भी मृतकदाह स्थान पर स्तूप बनवाने की प्रवृत्ति शुरु हुई।

मीमांसा—जिन चैत्य कहो या जिनस्तूप कहो या जिन मंदिर कहो एक ही बात है। अपने पूज्य उपकारी श्री तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिकृति, प्रतिमा या पादुका मंदिर आदि में विराजमान करके उनकी अनुपस्थिति में उनकी चरणपादुका, प्रतिमा आदि का वंदन, पूजन, सत्कार एवं सम्मान करके सम्यग्दर्शनवन्त भव्यजन प्रभुभक्ति करते हैं।

आगम शास्त्र में भी भरत द्वारा जिन मंदिर बनवाने का उल्लेख है। यथा श्री आवश्यक सूत्रान्तर्गत जगचिन्तामणि चैत्यवंदन में "अट्ठावय संठविय रूव, कम्मट्ठ विणासण"। तथा सिद्धस्तव में "चत्तारि अट्ठ दस दोय, वंदिया जिणवरा चउविसं" इत्यादि। इस तथ्य से यह सिद्ध होता है कि चतुर्थ आरे की शुरुआत से ही जिनप्रतिमा, जिनपादुका और जिनमंदिर थे और जिन प्रतिमा पूजा भी थी यह आगमिक सत्य है। इस तथ्य को प्रामाणिक और तटस्थ व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता। आचार्य प्रतिमा पूजा और जिनमन्दिर के सत्य तथ्य को स्वीकार नहीं करते हैं, यह उनकी भयंकर भूल है। मूर्तिपूजा जैसे सत्य विषय को विवादास्पद बनाना और उसके ऐतिहासिक तथ्यों से इन्कार करना सूर्य के सामने धूलि फेंकने की बालिश चेष्टा मात्र ही है।

श्री आवश्यक सूत्र में भरत चक्रवर्ती के बनवाये जिनमंदिर का अधिकार है।

यथा—

थुभसय भाउगाणं चउव्विसं चेव जिणघरेकासि ।
सव्वजिणाणे पडिमा, वण्ण पमाणेहिं नियएहि ।।

अर्थात्—एक सौ भाईयों के एक सौ स्तूप और चौबीस तीर्थंकर के जिनमन्दिर बनवाकर उसमें सर्व तीर्थंकर की प्रतिमा अपने वर्ण तथा शरीर के प्रमाण सहित (श्री अष्टापद पर्वत ऊपर भरत चक्रवर्ती ने) बनवायी ।

अष्टापदजी पर्वत पर भरतचक्रवर्ती ने मंदिर बनवाये थे इस विषय में दो प्राचीन इतिहास भी साक्षी देते हैं । एक "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" नामका इतिहास जो महाधुरंधर विद्वान कलिकाल सर्वज्ञ पूज्य श्री हेमचन्द्राचार्य महाराज ने रचा है और दूसरा "चउवन महापुरिस चरियम्" जो महान जैनाचार्य श्रीमद् शीलांकाचार्य द्वारा रचित है । उपरोक्त दोनों महान् ग्रन्थों में भी अष्टापदगिरि पर भरतचक्रवर्ती द्वारा जिनमंदिर बनवाने का उल्लेख है । यह दोनों महान् ग्रन्थ ऐसा भी कहते हैं कि दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवान के चाचा सगरचक्रवर्ती के ६० हजार पुत्रों ने इस अष्टापद तीर्थ की रक्षा में प्राण गंवाये थे । इस बात का उल्लेख आचार्य हस्तीमलजी ने "जैन धर्म का मौलिक इतिहास" पुस्तक में खंड १ पृ० १६५ पर किया है । यथा—

सहस्रांशु आदि सगर के ६० हजार पुत्र चक्रवर्ती सगर की आज्ञा प्राप्त कर सेनापति रत्न, दण्ड रत्न आदि रत्नों और एक बड़ी सेना के साथ भरत क्षेत्र के भ्रमण के लिये प्रस्थित हुए । अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए जब वे अष्टापद पर्वत के पास आये तब उन्होंने अष्टापद पर जिन मंदिरों को देखा और उनकी सुरक्षा के लिये पर्वत के चारों ओर एक खाई खोदनेका विचार

किया। इन दोनों आचार्यों के उपरि उद्धृत ग्रन्थों में उल्लेख है कि जह्नु आदि उन ६० हजार सगर पुत्रों ने भवनपतियों के भवन तक खाई खोद डाली। जह्नु कुमार ने दण्ड रत्न के प्रहार से गंगानदी के एक तट को खोदकर गंगा के प्रवाह को उस खाई में प्रवाहित कर दिया और खाई को भर दिया। खाई का पानी भवनपतियों के भवनों में पहुँचने से वे रुष्ट हुए और नागकुमारों के रोष वश उन ६० हजार सगर पुत्रों को दृष्टिविष से भस्मसात् कर डाला। ✲ ✲ ✲

मीमांसा—आचार्य ने यहां कपट करके अष्टापद पर्वत पर जिनमंदिर था इस तथ्य को आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजी और आचार्य श्री शीलांगाचार्यजी के नाम से लिखकर स्वयं को मंदिर के विषय में अलिप्त रखकर अन्याय पूर्ण कृत्य किया है। सत्य स्वीकारने का अवसर आया वहाँ चालाकी पूर्वक अन्य के नाम लिख देना बेईमानी ही मानी जायेगी। आश्चर्य तो यह है कि अन्य ऐतिहासिक प्रसंग इन्हीं ग्रन्थों में से लेकर वहां आचार्य हस्तीमलजी ने ऐसा व्यक्त नहीं किया है कि पूर्वाचार्यों ने ऐसा लिखा है, किन्तु वहां तो उन्होंने स्वयं अपने नाम से ही लिख दिया है। फिर जिन मंदिर और जिन प्रतिमा की बात आयी वहाँ ऐसा अन्याय क्यों ?

पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज और पूज्य शीलांगाचार्यादि अनेक सुविहित पूर्वाचार्यों के नामोल्लेख करके आचार्य हस्तीमलजी खंड–१ (पुरानी आवृत्ति) अपनी बात पृ० ६ पर लिखते हैं कि—

✲ ✲ ✲ उपरोक्त पर्यालोच के बाद यह कहना किंचित् मात्र भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि हमारा जैन इतिहास बहुत गहरी सुदृढ़ नींव पर खड़ा है। यह इधर उधर की किंवदन्ती या कल्पना के आधार से नहीं पर प्रामाणिक पूर्वाचार्यों की अविरल परम्परा से प्राप्त है। अतः इसकी विश्वसनीयता में लेशमात्र भी शंका की गुंजाइश नहीं रहती। ✲ ✲ ✲

मीमांसा—उपरोक्त सत्य तथ्य लिखने वाले आचार्य हस्तीमलजी की कूटनीति देखो कि वे स्वयं श्री अष्टापद गिरि पर जिन-मन्दिर की रक्षा हेतु जान गँवाने वाले सगर चक्रवर्ती के जह्नु आदि ६० हजार पुत्रों के विषय में पूज्य शीलांगाचार्य महाराज और पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज आदि कथित सर्व सुदृढ़ शास्त्रीय प्रमाणों को छोड़कर पौराणिक किंवदन्ती को प्रमाणित करते हैं, जो बात उनके मन की अस्थिरता एवं पक्षपातपूर्णता का सूचन करती है।

आचार्य कैसी दुरंगी नीति रीति अपनाते हैं कि एक ओर तो स्वीकार करते हैं कि पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज रचित "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" ग्रन्थ प्रामाणिक है और दूसरी ओर इस ग्रन्थ में *जिनमन्दिर, जिन प्रतिमा की बात आयी वहाँ इन्कार पूर्वक लिख देते* हैं कि ऐसी कोई बात मूल आगम में नहीं आयी है। 'त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र' की प्रामाणिकता के विषय में खंड १, पृ० ५६ पर वे लिखते हैं कि—

✱✱✱ यह है आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि द्वारा विरचित त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र *का उल्लेख जो पिछली आठ शताब्दियों से भी* अधिक समय से लोकप्रिय रहा है। ✱✱✱

मीमांसा—बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनको प्रमाणित करने के लिये आचार्य "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" का सहारा लेते हैं, किन्तु जिन मन्दिर और जिन प्रतिमा विषयक बात आनेपर सत्यमार्ग से विपरीत चलकर तुरन्त ही झूठ का सहारा ले लेते हैं। अष्टापदजी तीर्थ की रक्षा में जह्नु आदि ६० हजार सगर पुत्रों ने वीरगति पायी थी ऐसा उल्लेख त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र और चउवन महापुरिस चरियम् में होते हुए भी मंदिर के विरोध के कारण आचार्य लिख देते

हैं कि—"ऐसा कोई उल्लेख मूलागमों में दृष्टिगोचर नहीं होता है।" किन्तु आचार्य की दुरंगी नीति देखो कि ६० हजार पुत्रों की मौत के बाद सगर चक्रवर्ती का विरह विलाप और संसार वैराग्य आदि का वर्णन श्री शीलांगाचार्य महाराज रचित "चउवन महापुरिस चरियं" नामक ग्रन्थ के सहारे ही लिखते हैं। आश्चर्य तो यह है कि यहाँ आचार्य हस्तीमलजी ने ऐसा क्यों नहीं लिखा कि "ऐसा कोई उल्लेख मूलागमों में *दृष्टिगोचर नहीं होता है।"*

श्री आवश्यक सूत्र, श्री सिद्धस्तव आदि अनेक प्राचीन ग्रंथों एवं पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज और पूज्य शीलांगाचार्य महाराज जैसे सत्यव्रती प्राचीन ग्रन्थकारों ने लिखा है कि अष्टापद पर्वत स्थित जिन-मंदिरों की रक्षा हेतु खाई खोदने और उसमें गंगा का पानी प्रवाहित करने पर नाग देवता के कोप में जह्नु आदि ६० हजार सगरपुत्रों ने जान गँवायी थी। पूर्वाचार्यों के इस सत्य कथन को असत्य कहकर आचार्य हस्तीमलजी ने किंवदन्ती स्वरूप पौराणिक गपोड़े का पक्ष करके जिन मन्दिर एवं जिनप्रतिमा विषयक अपनी द्वेष परायणता का परिचय खंड १, पृ० १६५ पर दिया है। यथा—

✲✲✲ संभव है, पुराणों में शताश्वमेधी की कामना करने वाले महाराज सगर के यज्ञाश्व को इन्द्र द्वारा पाताल लोक में कपिलमुनि के पाश बांधने और सगरपुत्रों के वहां पहुंचकर कोलाहल करने से कपिलऋषि द्वारा भस्मसात् करने की घटना से प्रभावित हों जैनाचार्यों ने ऐसी कथा प्रस्तुत की हो। ✲✲✲

मीमांसा—ऐसा अनर्थ करने वाले आचार्य के ऐतिहासिक ज्ञान पर हमें तरस आता है। दृष्टिराग एवं जिनमन्दिर विषयक द्वेष के कारण ही इस अप्रमाणिक पौराणिक गपोड़े को आचार्य ने आगे

किया है। फिर खंड १ (पुरानी आवृत्ति) अपनी बात पृ० २६ पर लिखना कि—"साम्प्रदायिक अभिनिवेशवश कोई भी अप्रमाणिक बात नहीं आवे इस बात का ध्यान रखा गया है" यह नितांत गलत एवं भ्रान्तिपूर्ण ही साबित होता है। क्योंकि पूर्वाचार्यों के कथन को झूठा करके अन्य के असत्य कथन को आगे करना क्या अप्रमाणिकता नहीं है? "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" और 'चउवन महापुरिस चरिया" इन दो महान ग्रंथों में लिखित युक्तियुक्त प्रामाणिक बात न मानके और "संभव है" ऐसा लिखकर पुराणों की किंवदन्ती को मान करके आचार्य ने विश्वासघात किया है।

पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों के सहारे इतिहास लिखना और जिन-मन्दिर एवं जिन प्रतिमा की बात आये वहाँ कृतघ्नतापूर्वक यह कह देना कि—"पूर्वाचार्यों ने पुराणों की कथा से प्रभावित होकर ऐसी कहानी प्रस्तुत करदी है, जो नितांत गलत है।" फिर तो बहुत सी बातें पुराणों की कथा से प्रभावित होकर प्राचीन जैनाचार्यों ने कही है, ऐसी मूर्खता-पूर्ण बात कहने की एवं मानने की आपत्ति भी आसकती है।

कल्पना की उडान में भटकते हुए आचार्य अपनी धुन में यह भी तुलना करना भूल गये हैं कि वह पुराण की उक्ति प्राचीन है या अपने आचार्यों की उक्ति प्राचीन है? अगर यह तुलना की जाती तो वे ऐसा लिखने का महान् साहस नहीं कर पाते।

> जैन पूर्वाचार्यों के कथनों को झूठा कहने वाले यह क्यों भूल जाते हैं कि फिर उनके कथन पर कौन विश्वास करेगा?
>
> —न्याय विशारद पूज्य आचार्य श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज

[प्रकरण–८]

पूर्वाचार्यों का महान उपकार

पूज्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण, नवांगी टीकाकार श्री अभयदेव सूरि महाराज, वादिवेताल श्री शांतसूरि महाराज, श्री मलयगिरि महाराज, श्री शीलांगाचार्यजी, पूज्य श्री हरिभद्रसूरिजी, कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य महाराज, पूज्य श्री मल्लधारी हेमचन्द्राचार्य महाराज आदि अनेकानेक प्रातःस्मरणीय सुगृहीतनामधेय पूर्वाचार्यों ने आगम एवं आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य को जीवंत रखकर महान उपकार किया है जिसका बदला हम चुका नहीं सकते हैं।

इन महान पूर्व पुरुषों ने ही जिनप्रतिमा और जिनमन्दिर द्वारा तथा आगमशास्त्रों पर सरल अर्थपूर्ण वृत्ति, चूर्णि, भाष्य एवं टीकादि रचकर जैन संस्कृति को आज तक जीवंत रखा है। यद्यपि आचार्य हस्तीमलजी एवं उनका स्थानकपंथी समुदाय जिनप्रतिमा तथा जिनमंदिर और वृत्ति, चूर्णि, भाष्य एवं टीकादि पर अविश्वास एवं अनादर करते हैं, किन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि इन वृत्ति, चूर्णि, भाष्य, टीकादि के सहारे बिना वे लोग आगमग्रन्थों का हिन्दी या गुजराती आदि भाषा में सही सही अनुवाद भी नहीं करपाते हैं। फिर भी इन पूर्वाचार्यों की बुराई करने में स्थानकपंथी बाज नहीं आते हैं। स्थानकपंथी अमोलक ऋषि "शास्त्रोद्धार मीमांसा" पृ० ५३ पर लिखते हैं कि—

श्री जैनधर्म प्रचारार्थ श्री महावीरस्वामीजी के निर्वाण के १२४२ वर्ष में शैलांगाचार्य ने आचारांग और सूयगडांग की टीका बनाई, १५९० वर्ष पीछे अभयदेवसूरि ने स्थानांग से विपाक पर्यन्त ९ अंग की टीका बनाई, इसके बाद मलयगिरि आचार्य ने राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, पन्नवणा चन्द्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति, व्यवहार और नंदीजी इन ७ सूत्रों की टीका बनाई, चन्द्र-सूरिजी ने निरयावली का पंचक की टीका बनाई, ऐसे ही अभयदेव सूरि के शिष्य मल्लधारी हेमचन्द्राचार्य ने अनुयोग द्वार की टीका बनाई, क्षेमकीर्तिजी ने बृहत्कल्प की टीका की, शांतिसूरिजी ने श्री उत्तराध्ययनजी की वृत्ति-टीका-चूर्णिका-निर्युक्ति वगैरह सहित सविस्तार बनाया इन टीकाकारों ने अनेक स्थान मूलसूत्र की अपेक्षा रहीत व वर्तमान में स्वतः की प्रवृत्ति को पुष्ट करने जैसे मनःकल्पित अर्थ भर दिये ।

मीमांसा—स्थानकमार्गी अमोलक ऋषि में इन टीकाकार महापुरुषों की अपेक्षा ज्ञान का अंश मात्र भी होना असम्भव है, फिर भी इस महाशय ने पूर्वाचार्यों को झूठा करने में कोई कोरकसर नहीं छोड़ी है यह अत्यन्त खेद की बात है । यद्यपि अमोलकऋषि द्वारा उनके माने हुए ३२ आगमों का हिन्दी भाषा में अनुवाद इन पूर्वाचार्यों की टीकादि के सहारे ही किया गया है, ऐसा स्वीकार उसने अपने "शास्त्रोद्धार मीमांसा" नामक पुस्तक में किया है और जिनप्रतिमा एवं जिनमंदिर पर विरोध के कारण सूत्रों के अथ को तो अमोलकऋषि ने ही पलटा है, फिर भी उल्टा चोर कोतवाल को डांटे वाली बात सिद्ध करते हैं । उत्सूत्र भाषण को वज्रपाप समझने वाले भवभीरु महोपकारी पूर्वाचार्यों को "मनःकल्पित अर्थ करने वाले" कहना महाकृतघ्नता के सिवाय और क्या है ? "ज्ञानलव दुर्विदग्धं ब्रह्मापि नरं न रंजयति" इस सूक्ति को अमोलकऋषि चरितार्थ कर गये हैं । किन्तु पूर्वाचार्यों को झूठा करने में साध्वाभास अमोलकजी यह बात सर्वथा भूल ही गये हैं कि फिर उनके कथन को सत्य कौन मानेगा ?

स्थानकपंथी आचार्य, साधु आदि छलकपट द्वारा सूत्रों एवं अर्थों में परिवर्तन करते हैं, इसका नूतन उदाहरण यह है कि स्थानकपंथी अखिलेश मुनि द्वारा संकलित, सम्मति ज्ञानपीठ आगरा द्वारा मुद्रित "मंगलवाणी" नामक किताब के नवस्मरण में से "बड़ी शांति" नामक नौवें स्मरण [पृ० २९७-संस्करण ग्यारहवाँ] को मनमानी करके संक्षिप्त कर दिया गया है। "बृहत् शांति" स्तोत्र में से मूर्तिपूजा समर्थक पाठों को आगे-पीछे से निकाल देना एक प्रकार की तस्करवृत्ति ही है। फिर ये लोग एक दिन साहूकार भी बन सकते हैं कि श्वेताम्बरों ने बृहत् शांति स्तोत्र में कुछ पाठ 'प्रक्षेप कर दिया है।" स्थानक पंथियों की इस प्रकार की कुप्रवृत्तियों पर श्वेताम्बर जैन समाज को गंभीरता से विचार करना चाहिए।

आचार्य हस्तीमलजी पूर्वाचार्यों के नाम देकर उनके प्रति कृतज्ञभाव पूर्वक खंड–१ (पुरानी आवृत्ति) पृ० ६ पर अपनी बात में लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ उपरोक्त पर्यालोचन के बाद यह कहना किंचित्मात्र भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि हमारा जैन इतिहास बहुत गहरी सुदृढ़ नींव पर खड़ा है। यह इधर उधर की किंवदन्ती या कल्पना के आधार से नहीं पर प्रामाणिक पूर्वाचार्यों की अविरल परम्परा से प्राप्त है। अतः इसकी विश्वसनीयता में लेशमात्र भी शंका की गुंजाइश नहीं रहती।

मीमांसा—किन्तु उक्त बात लिखना कपटपूर्ण एवं भोले जनों को भ्रम में डालने हेतु ही है। क्योंकि वृत्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकादि शास्त्रों में आचार्य हस्तीमलजी स्वयं विश्वास नहीं करते हैं। साथ ही साथ पूर्वाचार्यों के कथन को अप्रमाणिक कहकर पौराणिक किंवदन्ती स्वरूप कल्पना के समर्थक भी यही आचार्य हैं।

सगर चक्रवर्ती के ६० हजार पुत्रों ने अष्टापदजी तीर्थ की रक्षा हेतु जान गँवायी थी ऐसा पूर्वाचार्यों का आगमानुसारी कथन होते हुए भी आचार्य खंड–१, पृ० १६५ पर पौराणिक किंवदन्ती लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ संभव है, पुराणों में शताश्वमेघी की कामना करनेवाले महाराज सगर के यज्ञाश्व को इन्द्र द्वारा पाताल लोक में कपिलमुनि के पाश बांधने और सगरपुत्रों के वहाँ कोलाहल करने से कपिलऋषि द्वारा भस्मसात् करने की घटना से प्रभावित हों जैनाचार्यों ने ऐसी कथा प्रस्तुत की हो। ☼ ☼ ☼

मीमांसा—देखिये, आचार्य हस्तीमलजी जिस डाल पर बैठे हैं उसीके ऊपर कुठाराघात कर रहे हैं। सुनी-सुनाई कल्पित बात लिखने के पीछे आचार्य का जैन तीर्थों के प्रति बहुत बड़ा पक्षपात ही सिद्ध होता है। उक्त बात से यह स्पष्ट होता है कि आगमेतर प्राचीन साहित्य के रचयिता पूर्वाचार्यों पर आचार्य हस्तीमलजी को अविश्वास है। लेकिन दूसरी ओर वे "इन पूर्वाचार्यों ने प्रवचन को सुरक्षित रखा" ऐसो आत्मवंचक प्रशंसा भी करते हैं। किन्तु ये पूर्वापर विरोधी बातें उनके अस्थिर चित्त की परिचायक मात्र हैं। खंड–२ पृ० १३ "अपनी बात" में आचार्य लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ प्रथमानुयोग और गण्डिकानुयोग के विलुप्त हो जाने के बाद जैन इतिहास को सुरक्षित रखने का श्रेय एक मात्र पूर्वाचार्यों की श्रुत-सेवा को है। इस विषय में उन्होंने जो योगदान दिया है, वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। आगमाश्रित निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकादि ग्रन्थों के माध्यम से उन्होंने जो उपकार किया है, वह आज के इतिहास गवेषकों के लिये बड़ा ही सहायक सिद्ध हो रहा है। ☼ ☼ ☼

मीमांसा—इतिहास गवेषकों के लिये पूर्वाचार्यों द्वारा रचित आगमाश्रित नियुक्ति, चूर्णि, भाष्य और टीका आदि शास्त्र सहायक सिद्ध हो रहे हैं, इस सहायता से सत्य की गवेषणा करके आचार्य सत्य-तथ्य आत्मसात् करें, तभी उनकी कथनी और करनी एक हो सकती है।

आश्चर्य तो इस बात का है कि आचार्य ने स्वमान्यता पोषक एवं जिनमन्दिर विरोधक इतिहास एक नामधारी समिति द्वारा बनवाया है, किन्तु पूर्वाचार्यों के कथन एवं ऐतिहासिक तथ्यों पर नहीं। ऐसी दशा में जैनागम और आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य, टीकादि शास्त्र एवं मंदिर, मूर्तियां आदि पुरातन अवशेषों को वे इन्द्रजाल ही सिद्ध कर रहे हैं। इस पर भी इन सबको सहायक लिखना आत्मवंचना मात्र प्रतीत होता है।

जब तक आचार्य हस्तीमलजी जैन इतिहास के मूलस्तम्भ जैनागम, पूर्वाचार्यों द्वारा रचित आगमेतर जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य एवं टीकादि शास्त्रों का सत्य आधार एवं मंदिर और जिनप्रतिमा के विषय में ऐतिहासिक प्राचीन अवशेषों का तथ्य होते हुए भी मूर्तिपूजा जैसे वास्तविक सत्य विषय को विवादास्पद बनायेंगे या उनके विषय में हठधर्मिता रखेंगे तब तक वे इतिहास लिखने पर भी अंधेरे में ही हैं और रहेंगे।

जैनागम और आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकादि शास्त्र जिसके दिल में हैं, वास्तव में उसके दिल में साक्षात् वीतराग ही बैठे हैं।

—१४४४ ग्रन्थकर्ता पूज्य हरिभद्रसूरिजी महाराज

[प्रकरण-६]

आर्द्रकुमार और जिन प्रतिमा

पूर्वभव में चारित्र की आराधना शबल (सदोष) रूप से करने पर अनार्य देश में जन्मे हुए राजपुत्र आर्द्रकुमार ने मगध सम्राट श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार के गुणगान सुनकर उनको उपहार भेजा और उनसे मैत्री चाही। भव्य जीव जानकर बुद्धिनिधान अभयकुमार ने आर्द्रकुमार को धर्म प्रेमी बनाने हेतु प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान की रत्न की प्रतिमा भेंट भेजी और आर्द्रकुमार को कहलाया कि इस उपहार को एकान्त में खोलना।

परम वीतराग श्री ऋषभदेव भगवान की मूर्ति-प्रतिमा को ध्यान से देखते देखते आर्द्रकुमार को पूर्वजन्म का स्मृति ज्ञान हो गया और जिनप्रतिमा के दर्शन से उन्हें समकित लाभ हुआ। पूर्वजन्म का साधुपन याद आने के कारण तथा साधु बनने की तीव्र भावना से उसने अनार्य देश से भागकर मगधदेश में आकर चारित्र ग्रहण किया।

जिन प्रतिमा देखकर आर्द्रकुमार को पूर्वजन्म का जातिस्मरण ज्ञान एवं बोधि लाभ हुआ था, इस विषय में श्री सूयगडांग सूत्र, दूसरा श्रुतस्कन्ध, छट्ठा अध्ययन में कहा है कि—

पीतीय दोण्ह दूओ, पुच्छणमभयस्स पत्थवेसो उ।
तेणावि सम्मदिट्ठित्ति, होज्ज पडिमारहंमिगया॥
दट्ठुं सम्बुद्धो रक्खिओ य।

व्याख्या—[यदुक्तं श्री सूत्रकृतांगे द्वितीय श्रुतस्कन्धे षष्ठाध्ययने]

अन्यदार्द्रकपित्रा जनहस्तेन राजगृहे श्रेणिकराज्ञः प्राभृतं प्रेषितम्। आर्द्रककुमारेण श्रेणिकसुतायाभयकुमाराय स्नेहकरणार्थं प्राभृतं तस्यैव हस्तेन प्रेषितम्। जनो राजगृहे गत्वा श्रेणिकराज्ञः प्राभृतानि निवेदितवान् सम्मानितश्च राज्ञा आर्द्रक प्रहितानि प्राभृतानि चाभयकुमाराय दत्तवान्, कथितानि स्नेहोत्पादकानि वचनानि। अभयेनाचिंति नूनमसौ भव्यः स्यादासन्नसिद्धिको, यो मया सार्द्धं प्रीतिमिच्छतीति। ततोऽभयेन प्रथमजिनप्रतिमा बहुप्राभृतयुताऽऽर्द्रककुमाराय प्रहिता, इदं प्राभृतमेकान्ते निरूपणीयमित्युक्तं जनस्य। सोप्यार्द्रकपुरं गत्वा यथोक्तं कथयित्वा प्राभृतमार्पयत्। प्रतिमां निरूपयतः कुमारस्य जातिस्मरणमुत्पन्नं, धर्मे प्रतिबद्धं मनः अभयं स्मरन् वैराग्यात्कामभोगेष्वनासक्तस्तिष्ठति। पित्राज्ञातं माक्वचिदसौ यायादिति पंचशत सुभटैर्नित्यं रक्ष्यते इत्यादि।

अर्थात्—एक दिन आर्द्रकुमार के पिता ने दूत के साथ राजगृह नगरी में श्रेणिक राजा को उपहार भेजा। आर्द्रकुमार ने श्रेणिक राजा के पुत्र अभयकुमार के साथ मैत्री करने हेतु उसी दूत के हाथ उपहार भेजा। दूतने राजगृह में जाकर श्रेणिक राजा को उपहार दिये। श्रेणिक राजा ने भी दूत का यथायोग्य सन्मान किया और आर्द्रकुमार द्वारा भेजे गये उपहार को अभयकुमार को दिया तथा स्नेह-वचन कहे। अभयकुमार ने सोचा कि निश्चय यह भव्य है और निकट मोक्षगामी है, जो मेरे साथ प्रीति चाहता है। तब अभयकुमार ने बहुत प्राभृत सहित प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान की प्रतिमा-मूर्ति आर्द्रकुमार को भेंट भेजी और दूत को संदेश दिया कि यह भेंट आर्द्रकुमार को एकान्त में दिखाना। दूतने भी आर्द्रकपुर में जाकर यथोक्त संदेश कहकर भेंट दे दी। जिनप्रतिमा को देखते देखते आर्द्रकुमार को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया एवं उसका मन धर्म में प्रतिबोधित हुआ। अभयकुमार को याद करता हुआ, वैराग्य से काम-भोगों में आसक्त नहीं होता हुआ आर्द्रकुमार वहाँ रहा है। आर्द्रकुमार के पिता

ने पुत्र आर्द्र को वैरागी जानकर, यह कहीं चला नहीं जाए इस वास्ते ५०० सुभटों के बीच में उसको रखा, इत्यादि।

श्री सूयगडांग सूत्र में यह भी उल्लेख किया है कि जब तक आर्द्रकुमार ने चारित्र-दीक्षा ग्रहण नहीं की तब तक वह अभयकुमार से प्राप्त जिन प्रतिमा की प्रतिदिन पूजा करता रहा था।

आर्द्रकुमार के उक्त कथानक के विषय में जिनप्रतिमा की बात आने के कारण तथ्य को तोड़-मरोड़ कर आचार्य हस्तीमलजी "अपनी बात" खण्ड १, पृ० ३० पर लिखते हैं कि—

अभयकुमार ने अनार्य देशस्थ अपने पिता के मित्र अनार्य नरेश के राजकुमार (आर्द्र) को धर्म प्रेमी बनाने के लिये "धर्मोपगरण (?)" की भेंट भेजी।

मीमांसा—उक्त कथन आचार्य ने कौन से प्राचीन शास्त्र के आधार पर किया है यह उन्हें प्रामाणिकता पूर्वक कहना चाहिये। श्री सूयगडांग सूत्र, भरतेश्वरवृत्ति, श्री आर्द्रकुमार चरित्र आदि प्राचीन ग्रंथों में अभयकुमार ने आर्द्रकुमार को (श्री ऋषभदेव भगवान की) जिनप्रतिमा भेजी ऐसा स्पष्ट कथन होते हुए भी जिनप्रतिमा विषयक स्वमतविरोध के कारण आचार्य ने सुनी-सुनाई स्वमति कल्पित बात लिख दी है, जिसमें सत्य का सर्वथा अभाव ही है।

यद्यपि कतिपय स्थानकपंथी लेखक अपनी पुस्तकों में ऐसा लिखते हैं कि अभयकुमार ने आर्द्रकुमार को "मुँहपत्ती का टुकड़ा" *भेजा था। कोई "ओघा (रजोहरण)"* भेजने का भी लिखते हैं, जो शास्त्र निरपेक्ष होने के कारण नितांत असत्य है।

जैन धर्म के विषय में स्वोत्प्रेक्षित तर्क एवं कल्पना शक्ति के आधार पर इतिहास लिखने वाले आचार्य हस्तीमलजी ने यहाँ

"धर्मोपगरण" ऐसा लिखकर सारा मामला गोलमोल ही रखा है। यानी अभयकुमार ने आर्द्रकुमार को "धर्मोपगरण" के रूप में क्या जिनप्रतिमा भेजी थी ? क्या मुँहपत्ती का टुकड़ा भेजा था ? क्या सामायिक करने का आसन भेजा था ? क्या ओघा (रजोहरण) भेजा था ? क्या पूंजनी भेजी थी ? प्रश्न तो यह होता है कि आचार्य माने जाने वाले हस्तीमलजी "जिन प्रतिमा" के विषय में झूठ का सहारा लेकर बेईमानी क्यों कर रहे हैं ?

टीका चूर्णि भाष्य उवेख्या, उवेखी निर्युक्ति ।
प्रतिमा द्वेषे सूत्र उवेख्या, दूर रही तुझ मुक्ति ।।
—न्यायविशारद पूज्य यशोविजयजी उपाध्यायजी

[प्रकरण–१०]

जरासंध और कृष्ण के बीच युद्ध

वासुदेव कृष्ण और प्रतिवासुदेव जरासंध के बीच युद्ध हुआ। जरासंध ने जरा नाम की विद्या से कृष्ण के सैनिकों को हतप्रभ कर दिया। जरा की बीमारी के कारण यादव सैन्य को लड़ाई लड़ने में असमर्थ देखकर, जरा निवारण हेतु वनमाली ने अट्ठम (तीन उपवास) तप किया। तप के प्रभाव से तुष्ट होकर धरणेन्द्र की अग्रमहिषी पद्मावती देवी ने महिमावन्ती श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा दी। जिसके अभिषेक जल छिड़कने से सब ही सैनिकों की मूर्छा दूर हुई। उस समय नेमिनाथजी ने विजय सूचक शंखनाद किया। शंखपूरने के कारण वहां शंखेश्वर नाम का गाँव बसाया, इस शंखेश्वर गाँव में पार्श्वनाथजी की प्रतिमा विराजमान की गयी और तब से पार्श्वनाथजी का एक नाम "शंखेश्वर पार्श्वनाथ" पड़ा। आज भी गुजरात के मेहसाणा जिले में 'शंखेश्वरजी तीर्थ" मौजूद है। श्री कल्पसूत्र की टीका में भी इसका उल्लेख है।

उक्त विषय में श्री शुभवीर विजय महाराज साहब का बनाया स्तवन जैन समाज में अत्यन्त प्रसिद्ध है। यथा—

शंखपुरी सबको जगावे, शंखेश्वर गाम बसावे।
मंदिर में प्रभु पधरावे, शंखेश्वर नाम धरावे रे ।।

सम्मति ज्ञानपीठ, आगरा से प्रकाशित "मंगलवाणी" नामक पुस्तक, जिसका संकलन स्थानक मार्गी अखिलेश मुनि ने किया है। जिसके पृ० २७१ (ग्यारहवाँ संस्करण) पर पार्श्वनाथ भगवान का स्तोत्र दिया है। जिसमें श्री पार्श्वनाथजी का एक विशेषण "श्री शंखेश्वर मंडन पार्श्वजिन" लिखा है।

अर्थात्—शंखेश्वर गाँव के सिरताज श्री पार्श्वनाथ भगवान। इससे भी शंखेश्वर पार्श्वनाथ नाम के तीर्थ की पुष्टि होती है।

शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा के विषय में श्री पार्श्वनाथ चरित्र और हरिवंश चरित्र में इस प्रकार का उल्लेख आता है कि—

गत चौबीसी के दामोदर नाम के तीर्थंकर भगवान को आषाढ़ी नाम के श्रावक ने पूछा कि—हे भगवन्! संसार से मेरा निस्तार कब होगा? तब दामोदर भगवान ने उसको बताया कि आगामी चौबीसी के तेवीसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान के तुम गणधर बनोगे तब तुम्हारा मोक्ष होगा। ऐसा सुनकर प्रभु पार्श्वनाथ की प्रतिमा उसने बनवायी थी। श्री शुभवीर विजयजी महाराज कृत "शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्तवन" में भी उक्त बात का जिक्र आता है। यथा—

संवेगे तजी घर वासो, प्रभु पार्श्व के गणधर थाशो।
तब मुक्तिपुरी में जाशो, गुणीलोक में वयणे गवाशो रे॥
शंखेश्वर साहिब साचो।
इम दामोदर जिन वाणी, आषाढ़ी श्रावके जाणी।
जिन वंदी निज घर आवे, प्रभु पार्श्वकी प्रतिमा भरावे रे॥
शंखेश्वर साहिब साचो।

खंड–१, पृ० ३५२ से ३६२ तक में जरासंध और कृष्ण की लड़ाई का लंबा चौड़ा वर्णन त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र, चउवन महापुरिष चरियं, वसुदेव हिन्डी आदि आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य से करने वाले आचार्य हस्तीमलजी ने "श्री नेमिनाथ ने शंख ध्वनि की" इस बात का जिक्र किया है, किन्तु पद्मावती देवी प्रदत्त पार्श्वनाथ की प्रतिमा के अभिषेक जल से यादव सैन्य की जरा की बीमारी नष्ट हुई आदि बहुत से तथ्यों पर पर्दा डाल दिया है, यह कितना आश्चर्य है ! इतिहास लिखने बैठे हैं और ऐतिहासिक तथ्य को छिपा रहे हैं, ऐसे इतिहास को कौन सत्य मानेगा ?

विषम काले जिनबिंब
जिनागम भविजन को आधारा।

[प्रकरण–११]

वैशाली में श्री मुनिसुव्रत स्वामी का स्तूप

श्रेणिक महाराजा के पुत्र कूणिक ने विशाला नगरी पर चढ़ाई की। उसी नगरी में बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत स्वामी की पादुका स्थापित थी, जिससे नगरी पर कूणिक विजय नहीं पा सके थे। इसका वर्णन श्री नन्दीसूत्र में पृ० ९१ पर है। यथा—

❂ ❂ ❂ विशालायां पुर्यां कूलवालकेन विशाला भङ्गाय यन्मुनि-सुव्रत पादुका स्तूपोत्खात् सा तस्य पारिणामिकी बुद्धिः। ❂ ❂ ❂

भावार्थ—विशाला नगरी का नाश करने के लिये श्री मुनिसुव्रत स्वामी के पादुका सहित स्तूप को उखाड़ने से नगरी का भंग हो सकेगा। ऐसा कथन कूलवालक मुनि ने किया यह पारिणामिक बुद्धि से।

वैशाली के विनाश के विषय में आचार्य हस्तीमलजी ने खंड-१, पृ० ७४६ से ७५४ तक लम्बा वर्णन किया है, किन्तु इस स्तूप के विषय में ऐतिहासिक विवरण नहीं दिया है। वैशाली के विनाश का संक्षिप्त इतिहास इसप्रकार है।

राजा श्रेणिक के पुत्र कूणिक और वैशाली के राजा चेटक के बीच भयंकर युद्ध हुआ। कूणिक का बहुत दिनों तक वैशाली पर घेरा पड़ा रहा। लाखों सैनिकों के संहार होने पर भी कूणिक से वैशाली

नगरी जीती नहीं जा सकी। दैवी शक्ति द्वारा कूणिक को ज्ञात हुआ कि वैशाली नगरी में श्री मुनिसुव्रतस्वामी का प्राचीन स्तूप है, जिसके प्रभाव से वैशाली अविजित रही है। अविजित वैशाली नगरी पर विजय पाने के लिये भगवान के स्तूप को तोड़ना आवश्यक था। अतः कूलवालक नाम के मुनि को मागधिका नाम की वेश्या द्वारा चरित्र-भ्रष्ट करवाकर नैमित्तिक के रूप में गुप्त रीति से वैशाली में प्रवेश करवाया गया। वर्षों के युद्ध से परेशान जनता ने नैमित्तिक कूलवालक को युद्ध मुक्ति का उपाय पूछा। कूलवालक ने श्री मुनिसुव्रत स्वामी का स्तूप तोड़ देने पर युद्ध समाप्ति बतायी। काफी प्रचार के बाद लोगों ने कूलवालक की बात पर विश्वास कर स्तूप को तोड़ दिया। पूर्व संकेत के अनुसार कूणिक ने पहिले सैनिकों को वैशाली से दूर हटा लिया, किन्तु बाद में वैशाली पर आक्रमण करके इसको जीत लिया। खण्ड १, पृ० ७५३ पर आचार्य लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ दुश्मन के घेरे से ऊबे हुए नागरिकों ने कूलवालक को नैमित्तिक समझकर बड़ी उत्सुकता से पूछा—विद्वन्! शत्रु का यह घेरा कब तक हटेगा?

कूलवालक ने उपयुक्त अवसर देखकर कहा—"यह स्तूप बड़े अशुभ मुहूर्त में बना है। इसी के कारण नगर के चारों ओर घेरा पड़ा हुआ है। यदि इसे तोड़ दिया जाय तो शत्रु का घेरा हट जायगा।

कुछ लोगों ने स्तूप को तोड़ना प्रारम्भ किया। कूलवालक ने कूणिक को संकेत से सूचित किया। कूणिक ने अपने सैनिकों को घेरा समाप्ति का आदेश दिया। स्तूप के ईषत् भंग का तत्काल चमत्कार देखकर नागरिक बड़ी संख्या में स्तूप का नामोनिशां तक मिटा देने के लिये टूट पड़े। कुछ ही क्षणों में स्तूप का चिन्ह तक नहीं रहा।

कूलबालक से इष्टसिद्धि का संकेत पाकर कूणिक ने वैशाली पर प्रबल आक्रमण किया। उसे इस बार वैशाली का प्राकार भंग करने में सफलता प्राप्त हो गई। ✲ ✲ ✲

मीमांसा—इन सब बातों से इस तथ्य की ठोस पुष्टि होती है कि उस समय में भी यानी आज से करीब २५०० वर्ष पहिले भी वैशाली नगरी में श्री मुनिसुव्रत स्वामी का प्रभावशाली स्तूप था अर्थात् जिन मंदिर था, जिसके कारण ही वैशाली अविजित रही थी।

जिनस्तूप के ऐसे अवर्णनीय प्रभाव को एवं जिनमन्दिर विषयक तथ्य का स्थानकपंथी आचार्य ने यहां प्रसंग प्राप्त विशद वर्णन नहीं किया है जो अनुचित है। आचार्य ने अपने इतिहास में यह भी नहीं लिखा है कि यह स्तूप कब बना था ? श्री महावीर स्वामी के समय में भी इसकी महिमा थी, आदि तथ्यों को भी आचार्य ने छिपाया है। फिर भी आज से २५०० साल पहिले भी वैशाली में जिनस्तूप यानी जिनमन्दिर था, इससे मूर्तिपूजा विषयक ठोस तथ्य को इतिहासकार आचार्य क्या स्वीकार करेंगे ? क्या आचार्य सत्य को सत्य रूप में पसंद करेंगे ?

✲

सूत्रमपास्य जड़ा भाषन्ते, केचन मतमुत्सूत्रम् रे।
किं कुर्मस्ते परिहृत पयसो, यदि पियन्ते मूत्रम् रे॥

अर्थात्—सूत्र नीति को छोड़कर मूर्ख-जड़ उत्सूत्र बोलता है। जो स्वादिष्ट दूध को छोड़कर पिशाब पीता है, उनके लिये हम क्या कर सकते हैं ?

—पू० विनय विजयजी उपाध्याय

[प्रकरण-१२]

आर्य श्री शय्यंभव सूरि और जिन प्रतिमा

जिसप्रकार श्री मुनिसुव्रत स्वामी के स्तूप के कारण वैशाली नगरी का विनाश संभव न हो सका था, ठीक उसीप्रकार यज्ञस्तम्भ (यूप) के नीचे रही भगवान श्री शांतिनाथजी की प्रभावशाली प्रतिमा के कारण शय्यंभव ब्राह्मण का यज्ञादि फलफूल रहा था और बाद में वे प्रतिमा दर्शन के कारण ही जैनदीक्षा में प्रतिबुद्ध हुए थे।

श्री महावीर स्वामी की पाट परम्परा में श्री सुधर्मा स्वामी के बाद चौथे श्री शय्यंभव सूरिजी आये। आपने श्री दशवैकालिक सूत्र की रचना की थी। आर्य श्री शय्यंभव सूरि के विषय में श्री दशवैकालिक निर्युक्ति शास्त्र तथा त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र इतिहास कथित कथानक इस प्रकार है।

आर्य श्री प्रभवस्वामी को अपने समुदाय में चतुर्विध श्री संघ संचालक तेजस्वी साधु नहीं मिला। राजगृह नगर निवासी, यज्ञानुष्ठान निरत शय्यंभव ब्राह्मण को ज्ञानबल से सुयोग्य जानकर आप राजगृही में पधारे और दो साधुओं को संकेत पूर्वक शय्यंभव के यज्ञमंडप पर गोचरी के लिये भेजा। शय्यंभव ब्राह्मण ने यज्ञमंडप (स्थल) अपवित्र होने के डर से उनको रोका। तब साधु बोले कि—"तुम तत्त्व नहीं जानते"। शय्यंभव ने यज्ञगोर-पुरोहित को तत्त्व पूछा। प्रधान पुरोहित ने यज्ञयाग और वेद को ही तत्त्व बताया। इस पर भी शय्यंभव की जिज्ञासा शांत न हुई और क्रुद्ध

होकर उसने तलवार निकाली, तब जान खतरे में जानकर पुरोहित ने बताया कि—"सुख चैन से यज्ञ हो रहा है और तुम फूल फल रहे हो, इसका कारण यज्ञ स्तम्भ के नीचे रही श्री शांतिनाथ भगवान की प्रभावशाली प्रतिमा है।" शय्यंभव ने यूप (यज्ञ स्तम्भ) को तत्काल उखाड़कर प्रशांतमुद्रायुक्त श्री शांतिनाथ भगवान की प्रतिमा निकाली।

बाद में आर्य श्री प्रभवस्वामी के पास जाकर बाह्यात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा का तत्त्व पाकर अपनी सगर्भा स्त्री को छोड़कर उसने चारित्र लिया।

उक्त यथार्थ कथानक के तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर खंड २, पृ० ३१४ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

✲ ✲ ✲ उपाध्याय ने काल के समान करवाल लिये अपने यजमान (शय्यंभव ब्राह्मण) को सम्मुख देखकर सोचा कि अब सच्ची बात बताये बिना प्राणरक्षा असंभव है। यह विचार कर उसने कहा—"अर्हत् भगवान द्वारा प्ररूपित धर्म ही वास्तविक तत्त्व और सही धर्म है (!?)" इसका सही उपदेश यहाँ विराजित आचार्य प्रभव से तुम्हें प्राप्त करना चाहिए। ✲ ✲ ✲

मीमांसा—श्री दशवैकालिक सूत्र के कर्ता श्री शय्यंभवसूरि श्री शांतिनाथजी की प्रतिमा को देखकर प्रतिबोधित हुए थे, ऐसा श्री दशवैकालिक नियुक्ति शास्त्र में भी लिखा है, यथा—

✲ ✲ ✲ "सिज्जंभवं गणहरं जिणपडिमा दंसणेण पडिबुद्धं' ॥ श्लोक-१४ ॥ ✲ ✲ ✲

यज्ञगोर ने शय्यंभव ब्राह्मण को यज्ञस्तम्भ के नीचे रही श्री शांतिनाथ भगवान की प्रतिमा को तत्त्व बताया था, ऐसा दशवैकालिक

नियुक्ति आगम एवं पूज्य हेमचन्द्राचार्य द्वारा रचित प्राचीन इतिहास के परिशिष्ट पर्व में भी प्रतिमा का सत्य बताया गया है, फिर भी प्रतिमा विषयक सत्य को छिपाना आचार्य का अनुचित कार्य ही है। इतिहास लेखन में स्थानकपंथी आचार्य को यदि प्रतिमा विरोधी मान्यता का ही समर्थन एवं निरूपण करना था, तो इतिहास लिखने की आवश्यकता ही क्या थी ? और उन्होंने अपने स्थानकपंथी इतिहास का नाम "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" ऐसा रखकर असत्य का सहारा क्यों लिया ?

पडिक्कमणे मुनिदान विहारे, हिंसा दोष विशेष ।
लाभालाभ विचारी जोता, प्रतिमा मां शो द्वेष ?
—न्यायविशारद पूज्य यशोविजयजी उपाध्यायजी

[प्रकरण—१३]

परमात्मा श्री नेमिनाथ व संहार

कृष्ण और जरासंध के युद्ध में मातलि सारथी की बात में आकर श्री नेमिनाथ ने संहारक लीला दिखायी और कुछ क्षणों में ही एक लाख शत्रुओं को मार गिराया। मानो श्री नेमिनाथ परमात्मा में दया का अंश ही न हो ऐसी कल्पित बात परमार्थ न जानने की अनभिज्ञता के कारण आचार्य ने जोड़ दी है।

खंड १, पृ० ३५६ पर आचार्य लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ यह देखकर मातलि (भगवान नेमिनाथ के सारथी) ने हाथ जोड़कर अरिष्टनेमि से निवेदन किया—"त्रिलोकनाथ ! यह जरासन्ध आपके सामने एक तुच्छ कीट के समान है। आपकी उपेक्षा के कारण यह पृथ्वी को यादव विहीन कर रहा है। प्रभो ! यद्यपि आप जन्म से ही सावद्य (पापपूर्ण) कार्यों से पराङ्मुख हैं, तथापि शत्रु द्वारा जो आपके कुल का विनाश किया जा रहा है, इस समय आपको उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। नाथ ! अपनी थोड़ी सी "लीला" दिखाइये। ❂ ❂ ❂

मीमांसा—"अपनी थोड़ी सी लीला दिखाइये" इस कथन को आचार्य हस्तीमलजी ने कौन से आगम शास्त्र से लिया है, वह इन्होंने सूचित नहीं किया है। किन्तु दोष रहित परमात्मा को लीला और वह भी 'संहारक लीला' के साथ जोड़कर आचार्य ने अक्षम्य अपराध ही किया है।

जिनमंदिर में जिनपूजा के अवसर, स्थावरकाय जीवों की स्वरूपमात्र विराधना के विषय में हिंसा हिंसा का शोर मचाने वाले और दयाधर्म की बांग पुकारने वाले आचार्य हस्तीमलजी ने परमकृपालु, ज्ञानगर्भित वैराग्यवन्त, जन्म से तीन ज्ञान धारक श्री नेमिनाथ परमात्मा को संहारक हिंसक लीला करने वाला बताया है, यह कहां तक सही हो सकता है, पाठक स्वयं निर्णय कर सकते हैं। मातलि सारथी के 'लीला दिखाइये' सिर्फ इतना कहने पर ही जन्म से पाप कार्यों से परांगमुख श्री नेमिनाथ भगवान को मानो पानी चढ़ गया और संहारक लीला दिखायी ऐसा खण्ड १, पृ० ३५८ पर आचार्य लिखते हैं। यथा—

इस तरह प्रभु (अरिष्टनेमिनाथजी) ने बहुत ही स्वल्प समय में एक लाख शत्रु-योद्धाओं को नष्ट कर डाला।

मीमांसा—दयार्द्र श्री नेमिकुमार ने पशु संहार के बारे में सोचकर और पशु पुकार को सुनकर शादी तक नहीं की थी और संसार त्यागपूर्वक चारित्र लिया था। ऐसे परमकृपालु परमात्मा नेमिनाथ ने लाख सैनिकों को मार गिराया ऐसा आचार्य हस्तीमलजी का लिखना विचार शून्य और सूत्र के रहस्यों एवं परमार्थ नहीं जानने की अक्षमता को ही सूचित करता है। यद्यपि इस विषय में बिना गुरुगम और अनभिज्ञतावश आचार्य हस्तीमलजी ने परमात्मा श्री अरिष्ट नेमिनाथजी की 'नरसंहारक लीला' वह भी मातलि सारथी के "लीला दिखाइये" सिर्फ इतने शब्दों पर, को त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र के साथ जोड़ना चाहा है जो अनुचित है।

लकीर के फकीर बनकर अन्य को सूत्र के परमार्थ रहस्य को जानों ऐसा कोरा उपदेश [श्री ऋषभदेव भगवान के ४०० दिन के उपवास के विषय में] देने वाले अहिंसक धर्म के ठेकेदार आचार्य ने यहाँ सूत्रार्थ को जानने की कोशिश नहीं की है, इस कारण ही सिर्फ मातलि

सारथी के वचन पर ही जन्म से पापकार्यों से पराङ्मुख श्री नेमिनाथ भगवान को संहारक लीला के साथ जोड़ने का साहस कर सके हैं। आचार्य यहाँ यह क्यों भूल जाते हैं कि तीर्थंकर परमात्मा का चारित्र तद्भव में सर्वथा निर्दोष ही होता है। ऐसी भ्रामक बात लिखने वालों से जैन समाज को सावधान रहना चाहिए और विशेषकर दयाधर्मी समाज को, क्योंकि तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान के उज्ज्वल चरित्र को कलंकित करने की आचार्य हस्तीमलजी की यह गर्हणिय चेष्टा है।

यद्यपि चौबीस तीर्थंकरों में सोलहवें शांतिनाथजी, सत्रहवें कुंथुनाथजी, एवं अठारवें अरनाथजी षट्खंड पृथ्वी के साधक चक्रवर्ती राजा हुए हैं। किन्तु इन पुण्यात्माओं को बिना शस्त्र उठाये ही षट्खंड भूमि प्राप्त हो जाती है, क्योंकि तीर्थंकर पुण्यलक्ष्मी उनके चरण चूमती है। ऐसा ही पुण्य प्राग्मार श्री पार्श्वकुमार का था। उनके युद्धभूमि में जाने के साथ ही उस मातलि सारथी सहित देवोंद्वारा पूजे गये पार्श्वकुमार को देखकर यवनराजा प्रभु के चरणों में आ गया था। ऐसा ही पुण्य प्रकर्ण श्री नेमिनाथजी का था, ऐसा आचार्य को स्वीकार करना चाहिए।

जिसके हृदय में सूत्राभ्यास द्वारा सद्बोधक प्रादुर्भाव हुआ है, उसके हृदय में ही आगमसूत्र की तात्त्विक स्पर्शना होती है।

—न्यायविशारद पूज्य यशोविजयजी उपाध्याय

[प्रकरण-१४]

श्री पार्श्वनाथजी को वैराग्य

एक बार पार्श्वकुमार कुमारावस्था में बगीचे में अपनी पत्नी प्रभावती के साथ गये। वहाँ महल की दीवार पर श्री नेमिनाथजी ने राजीमति को छोड़कर किस प्रकार चारित्र लिया इनके विषय में चित्र देखे। यह निमित्त पाकर पार्श्वकुमार चारित्र लेने के लिये उद्यत हुए।

इस विषय में पूर्वमुनि रचित श्री पार्श्वनाथजी की स्तुति भी जैन समाज में प्रसिद्ध है यथा—

"नेमिराजी चित्र विराजी, विलोकित व्रत लिये"।

अर्थात्—नेमिनाथजी और राजीमति को (बारात के) चित्र में विराजमान देखकर पार्श्वकुमार ने चारित्र लिया।

श्री पार्श्वकुमार को चारित्र लेने में चित्र निमित्त बने हैं ऐसा पूर्वाचार्य कहते हैं, फिर भी यह बात आचार्य हस्तीमलजी को अखरती है, जो सर्वथा अनुचित है। चित्र दर्शन से ज्ञान प्राप्ति के इस सत्य तथ्य को अन्य पूर्वाचार्यों के नाम लिखकर आचार्य ने स्वयं को अलिप्त रखने की चेष्टा की है और इतिहासकार के नाते सत्य में अरुचि प्रगट की है, जो उचित नहीं है।

श्री पार्श्वकुमार को तस्वीर से [चित्र दर्शन से] वैराग्य हुआ है, इस तथ्य को मजबूर होकर खंड १, पृ० ४८६ पर आचार्य हस्तीमलजी को अन्य पूर्वाचार्यों के नाम लिखने पड़े हैं कि—

☼ ☼ ☼ जैसे 'चउवन महापुरिस चरियं' के कर्ता आचार्य शीलांक, "सिरिपास नाह चरियं" के रचयिता देवभद्रसूरि और 'पार्श्वनाथ चरित्र' के लेखक भावदेव तथा हेमविजयगणि ने भित्तिचित्रों को देखने से (पार्श्वकुमार को) वैराग्य होना बताया है। ☼ ☼ ☼

मीमांसा—इतने सारे प्राचीनाचार्यों का कथन होने पर तो आचार्य को तस्वीर विषयक तथ्य को अवश्य स्वीकारना ही चाहिए और इस विषय में अपनी नाराजगी दूर करनी ही चाहिए। स्थानकपंथ के आद्य प्रणेता एक वृद्ध जैन भाई लोंकाशाह ने चारित्र लिया था, ऐसा कहीं से सिर्फ संकेत मात्र मिल जाने पर बढ़ा चढ़ाकर लम्बी वाक्य रचना कर देने में कुशल आचार्य को पार्श्वकुमार के वैराग्य में प्राचीन पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों का सहारा मिलने पर भी सत्य को स्वीकार करने में कौनसा सिद्धान्त बाध्य करता है ?

अपनी तस्वीर बनवाकर बँटवाने वाले, गृहस्थ की तस्वीर को अपने इतिहास में छपवाने वाले, तीर्थंकर परमात्मा के लांछन चित्रों को मान्यता देनेवाले आचार्य जब तीर्थंकर परमात्मा की तस्वीर मात्र से ही नफरत करते हैं तब सखेद आश्चर्य होता है।

यद्यपि जन्म से ही तीन ज्ञानधारक तीर्थंकर परमात्मा स्वयं बुद्ध होते हैं, वे किसी से बोध पाकर चारित्री नहीं बनते, फिर भी जैसे अरिष्टनेमिकुमार का शादी न करके चारित्र लेने में पशुओं का करुण क्रंदन निमित्त हुआ है, वैसे ही पार्श्वकुमार को नेमिनाथ और राजीमति का चित्र दर्शन चारित्र का निमित्त बना ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है, जो

सर्वथा उचित ही है। एवं ज्ञानगर्भित वैराग्यवन्त होते हुए भी तीर्थंकर परमात्मा नियत समय पर ही चारित्र लेते हैं, उसी तरह स्वयंबुद्ध होने पर भी अगर वे कोई बाह्य निमित्त से चारित्र ग्रहण करते हैं, तो उसमें शास्त्र सिद्धान्त सहमत है। श्री शान्तिनाथ भगवान के चरित्र में खंड १, पृ० २४० पर आचार्य स्वयं लिखते हैं कि—

☼☼☼ लोकान्तिक देवों से प्रेरित होकर प्रभु ने वर्षभर याचकों को इच्छानुसार दान दिया........................(यावत्) सिद्ध की साक्षी से सम्पूर्ण पापों का परित्याग कर दीक्षा ग्रहण की। ☼☼☼

मीमांसा—उक्त प्रकार ही पूर्वाचार्यों का प्राचीन ग्रन्थों में ऐसा कहना है कि श्री पार्श्वकुमार को चारित्र का निमित्त श्री नेमिनाथ तथा राजीमति के बारात के चित्र हुए थे। इस सत्य तथ्य को प्रामाणिकता पूर्वक आचार्य को स्वीकार करना चाहिए।

पाप नहीं कोई उत्सूत्र भाषण जिस्यो,
धर्म नहीं कोई जग सूत्र सरिखो ॥

—अध्यात्ममूर्ति महान विद्वान्
श्री आनन्दघनजी महाराज

[प्रकरण–१५]

प्रतिमा से वैराग्य का उपदेश

कुम्भराजा की पुत्री मल्लिकुमारी का सौंदर्य अलौकिक था। लोकोत्तर सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर पूर्वभव के छह मित्रों ने मल्लिकुमारी के साथ शादी करनी चाही। राजा कुम्भ डर गये कि एक राजकुमार को मल्लिकुमारी देने पर उन्हें अन्य के साथ लड़ाई मोल लेनी पड़ेगी। बाद में मल्लिकुमारी ने अपनी प्रतिकृति-प्रतिमा बनवाकर शरीर की अशुचिता उस प्रतिमा-मूर्ति द्वारा दिखाकर उन छहों राजकुमारों को प्रतिबोधित किया था।

श्री ज्ञातासूत्र एवं ठाणांगसूत्र में भी लिखा है कि मल्लि-कुमारी ने अपनी प्रतिकृति-प्रतिमा द्वारा राजकुमारों को प्रतिबोधित किया था। इस विषय में खंड १, पृ० २७८ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ सूर्योदय होते ही मोहन घर के गर्भगृहों के वातायनों में से जितशत्रु आदि उन छहों राजाओं ने भगवती मल्लि द्वारा निर्मित साक्षात् मल्लिकुमारी के समान, अनुरूप सुन्दरी, रूप-लावण्य-यौवन सम्पन्ना भगवती मल्लि की प्रतिकृति-प्रतिमा को मणिपीठ पर देखा। ☼ ☼ ☼

मीमांसा—तस्वीर में बहुत कुछ रहस्य भरा हुआ है, तभी तो स्थानकपंथी संत भी अपनी तस्वीरें आज भी बड़े चाव से छपवाते-बँटवाते नजर आते हैं। पिछले प्रकरण में हम देख आये हैं कि श्री नेमिनाथ और राजीमति के चित्रों के दर्शन, श्री पार्श्वकुमार को चारित्र-

दीक्षा में निमित्त हुए थे और प्रस्तुत में भगवती मल्लिकुमारी अपनी प्रतिकृति-प्रतिमा द्वारा छहों राजाओं को प्रतिबोधित करती हैं। इन सब तथ्यों से प्रतिमा विषयक सत्य की पुष्टि होती है, जिसे प्रामाणिकता और हिम्मतपूर्वक आचार्य को स्वीकार करना चाहिए एवं तस्वीर सिर्फ "परिचय" के लिये ही नहीं है, किन्तु ज्ञान वंदनादि के लिये भी है ऐसा अनेकान्तवाद का आश्रय लेना चाहिए।

हमारे पास स्थानकमार्गी आचार्य चौथमलजी सहित ४३ मुनियों की सामूहिक तस्वीर-फोटो है, जिसके विक्रय हेतु समाचार पत्रों में भी प्रचार करवाया गया था। यद्यपि "तस्वीर सिर्फ परिचय के लिये है" ऐसा तस्वीर के नीचे लिखकर स्थानकपंथी बाहर से थोथा विरोध करते हैं किन्तु निज की तस्वीरें चाव से छपवाने और बँटवाने वाले वे लोग अपने अन्दर झाँककर देखें तो उन्हें तस्वीर का मुख्य प्रयोजन अपने आप मालुम हो जाएगा। जड़ नाम के स्मरण के पीछे जो आशय सधता है, इससे अनेक गुणा आशय जड़ तस्वीर या प्रतिमा के दर्शन पूर्वक के नाम स्मरण से सधता है, यह उनको समझना चाहिए।

अपनी तस्वीरें बड़े चाव से छपवाने-बँटवाने वाले स्थानकपंथी संतों ने क्या कभी तीर्थंकर भगवान की तस्वीर भी छपवायी-बँटवायी है ? अरे ! और तो क्या कहें ? एकान्ते शरण्य, ज्ञानदाता श्री तीर्थंकर की तस्वीर से नफरत करनेवाले आचार्य हस्तीमलजी स्वयं ने ही अपने इतिहास में दानदाता गृहस्थ की तस्वीर छपवाई है। तीर्थंकर भगवान की तस्वीर के प्रति ही ऐसा पक्षपात और घृणा करना आचार्य का अनुचित एवं कृतघ्नतापूर्ण कृत्य है।

विषम काले जिन बिम्ब जिनागम
भविजन को आधारा।

[प्रकरण–१६]

अरिहंत पर अभक्ति एवं पूर्वाचार्यों पर अबहुमान

"जैनधर्म का मौलिक इतिहास—खंड १" पर चौबीसों भगवान के परिचायक भिन्न भिन्न लांछन चित्रों की तस्वीर एवं भीतर में दानदाता गृहस्थ की तस्वीर छपाने वाले आचार्य हस्तीमलजी ने ज्ञानदाता तीर्थंकर परमात्मा की तस्वीर अपने इतिहास में न छपवाकर अरिहंत परमात्मा पर अपनी अभक्ति का परिचय दिया है। यानी आचार्य को गृहस्थ की तस्वीर से कोई पक्षपात नहीं है और तीर्थंकरों की लांछन तस्वीर से भी उन्हें कोई विरोध नहीं है, पक्षपात और विरोध है तो केवल ज्ञानदाता जिनेश्वर श्री तीर्थंकर भगवान की तस्वीर से है, जो सर्वथा अनुचित ही है। भिन्न-भिन्न तीर्थंकरों की मूर्तियों की पहचान करानेवाले लांछनों को मानना और उन मूर्तियों के प्रति आंखें मूंद लेना यह कौनसा रोग होगा ? ज्ञानी जाने ! किन्तु इसके मूल में आचार्य की तीर्थंकरों के प्रति भक्ति एवं बहुमान का अभाव ही प्रगट होता है।

इसी तरह आचार्य में महा धुरंधर पूर्वाचार्यों पर भी अभक्ति एवं अबहुमान प्रतीत होता है क्योंकि मूर्ति और मंदिर की बात आने पर आचार्य हस्तीमलजी वृत्ति, चूर्णि, भाष्य, टीकादि के रचयिता पूर्वाचार्यों को झूठा करने में तनिक भी लज्जा नहीं करते हैं। आश्चर्य

तो इस बात का है कि पूर्वाचार्यों द्वारा रचित टीकादि ग्रन्थों के सहारे बिना एक भी स्थानकपंथी विद्वान् (!) अपना लेख सम्पूर्ण एवं प्रामाणिक लिख ही नहीं पाते हैं, फिर भी पूर्वाचार्यों को झूठा ठहराने में वे अपनी कृतघ्नता नहीं समझते। यह कैसी विडंबना है कि गुड़ खाना और गुलगुलों से परहेज !

खंड १, पृ० ८८४ पर दी गयी, संदर्भ ग्रन्थ की सूची इस बात की साक्षी है कि आचार्य हस्तीमलजी को प्राचीन जैनाचार्यों पर श्रद्धा, भक्ति, बहुमान और आदर नहीं है। उसी सूची में स्थानकपंथी संत का नाम सन्मान एवं बहुमान सूचक विशेषणों से लिखा है।

आचार्य हस्तीमलजी ने अपने इतिहास की संदर्भ सूची में जिनसे ज्ञान लिया है उन महान् उपकारी पूर्वाचार्यों के नाम आ० हेमचन्द्र, मलयगिरि, अभयदेवसूरि, राजेन्द्रसूरि ऐसे अबहुमान सूचक शब्द लिखकर और बहुमान सूचक विशेषणों का प्रयोग न कर उनके उपकार का बदला कृतघ्नता से चुकाया है। अन्यथा महाउपकारी पूर्वाचार्यों के नाम लिखने का अवसर प्राप्त हो, वहाँ प्रातःस्मरणीय, महोपकारी, महाज्ञानी, पूज्य, पूज्यपाद, परमपूज्य ऐसे विनय, श्रद्धा, भक्ति, सम्मान, बहुमान, आदर और अहोभाव सूचक शब्दों के प्रयोग द्वारा आचार्य की लेखनी पुलकित होनी चाहिए थी। लेखनी को पूर्वाचार्यों के पवित्र विशेषणों से पुलकित करने के बजाय अन्य विषयों में फालतू पिष्ट पेषण करने वाले आचार्य ने उपकारी के उपकार का बदला चुकाने का अवसर आने पर अपनी लेखनी का सही सदुपयोग नहीं किया है, जो उनका आघात जनक वर्तन है, क्योंकि पूर्वाचार्यों में जो ज्ञान है उसका अंश भी आचार्य में होना संभव नहीं है।

कुछ शताब्दियों से पंडित मन्य आधुनिक चिंतकों की ऐसी कुप्रवृत्ति चली है, कि वे जिनसे ज्ञान लेते हैं उन महान पूर्वाचार्यादि के

नाम हेमचन्द्र, हरिभद्र, यशोविजय, शीलांग, मलयगिरि, ऐसे अबहुमान, अनादर, अविनय और अभक्ति पूर्ण शब्द प्रयोग करके उनके प्रति अपना अभिमान, अनम्रता और अश्रद्धा सूचित करते हैं। महाज्ञानी पूर्वाचार्यादि के पवित्र नाम के आगे पीछे विशेषण न देकर करना चाहिए उतना सम्मान नहीं करने वालों में और इस अविनय पूर्ण प्रवृत्ति को बढ़ावा देने में स्थानकवासी सम्प्रदाय में आचार्य हस्तीमलजी भी एक हैं जिसका हमें सखेद आश्चर्य है।

उपकारी के उपकार का बदला अपकार से चुकाने की ऐसी कृतघ्नता पूर्ण नीति-रीति को आचार्य भविष्य में अवश्य सुधारेंगे, हमारी यही आशा है।

अभ्यर्चनादर्हतां मनः प्रसादस्ततः समाधिश्च ।
तस्मादपि निःश्रेयसमतो हि तत्पूजनं न्याय्यम् ॥

श्री अरिहंत परमात्मा की अभ्यर्चना से मन की प्रसन्नता, मन की प्रसन्नता से निःश्रेयस-मोक्ष प्राप्त होता है। इसलिये सभी मुमुक्षु आत्माओं को अरिहंत प्रभु की पूजा अवश्य करना चाहिए। यह न्याय संगत एवं उचित है।

—१० पूर्वधर पूज्य उमास्वाति महाराज

[प्रकरण–१७]

अंबड सन्यासी और सम्यग्दर्शन

आगम शास्त्रों में जहाँ भी श्रावक के बारह व्रतों का वर्णन आया है वहां सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन का वर्णन आया है। सम्यग्दर्शन ग्रहण के बिना बारह व्रत की आराधना निष्फल मानी गई है। अतः श्री भगवती आदि सूत्रों में आनन्द, कामदेव आदि श्रावकों के बारह व्रत स्वीकारने की बात आयी है, वहाँ बारह व्रत के पूर्व सम्यग्दर्शन के स्वीकार की बात आती है। क्योंकि समकित बिना नवपूर्वी को भी अज्ञानी माना गया है। श्रद्धा भ्रष्ट को जैनागम ने भ्रष्ट कहा है। श्रद्धा-भ्रष्ट जमालि आदि के चारित्र की कीमत फूटी कौड़ी भी नहीं मानी गई है।

सुदेव-सुगुरु-सुधर्म पर ही श्रद्धा-विश्वास करना अर्थात् कुदेव, कुगुरु और कुधर्म को त्यागना यह सम्यग्दर्शन है। यानी अरिहंत देव और अरिहंत देव की प्रतिमा को ही मानना पूजना, अन्य मिथ्यादृष्टि देव-देवियों में विश्वास नहीं करना। पंच महाव्रत धारी शुद्ध जिनागम प्ररूपक साधुओं को ही गुरु मानना, कुवेष-कुलिंग धारी, उत्सूत्र प्ररूपक, आलू आदि अनंतकाय और बासी, द्विदल आदि अभक्ष्य को भक्षण करने वाले को गुरु नहीं मानना तथा वीतराग श्री अरिहंत देव प्ररूपित तत्त्वों पर ही श्रद्धा-विश्वास करना यह सम्यग्दर्शन है।

अंबड नाम का एक सन्यासी श्री महावीर भगवान का भक्त बना था। खंड १, पृ० ६६१-६६२ पर आचार्य हस्तीमलजी ने अंबड सन्यासी का अधिकार लिखा है, किन्तु अंबड ने श्री महावीर स्वामी के पास सम्यग्दर्शन को स्वीकार किया था, इस विषय में आचार्य ने एक शब्द भी नहीं लिखा है, जो इतिहास लेखक की अपूर्णता का सूचक है।

अंबड सन्यासी जब सम्यग्दर्शन को स्वीकार करता है तब भगवान श्री महावीर स्वामी के सामने प्रतिज्ञा करता है कि—

✲ ✲ ✲ णण्णत्थ अरिहंते वा अरिहंत चेइयाणि वा वंदिता वा नमंसंति वा।

[श्री उववाई सूत्र] ✲ ✲ ✲

अर्थात्—[अंबड कहता है, हे भगवन्! आज से मुझे] अरिहंत और अरिहंत की प्रतिमा को वंदन करना कल्पे, अन्य हरि हरादि और उनकी स्थापना-प्रतिमा को नहीं।

उक्त सूत्र का समदर्शी लौंकागच्छीय आचार्य श्री अमृतचन्द्र सूरि ने निम्नलिखित अर्थ किया है। यथा

✲ ✲ ✲ अरिहंत और अरिहंत की प्रतिमा की स्थापना ते वंदन करवा कल्पे (अन्य नहीं)।

[श्री उववाई सूत्र पृ० २९७] ✲ ✲ ✲

स्थानकमार्गी परम्परा के साधु अमोलक ऋषि उक्त सूत्र का कल्पित एवं ऊटपटांग अर्थ करते हैं कि—

✡✡✡ फक्त अरिहंत और अरिहंत के [चैत्य यानी] साधु को (?) ही वन्दन करना-नमस्कार करना यावत् सेवा भक्ति करना कल्पता है। [उववाई सूत्र पृ० १६३] ✡✡✡

मीमांसा—यहां अमोलक ऋषि ने "अरिहंत चेइयाणि" सूत्र पाठ का कल्पित एवं झूठा अर्थ "अरिहंत के साधु" ऐसा किया है, जो उनके श्री अमृतचन्द्र आदि लौंकागच्छीय आचार्य ने किये अर्थ से भी विपरीत एवं विरुद्ध है तथा कोष और व्याकरण निरपेक्ष भी है।

लोंकागच्छ के आचार्यों ने भी मन्दिर में जिन प्रतिमा को प्रतिष्ठित करवायी है, ऐसी दशा में जो स्वयं के आचार्यों के विरुद्ध चलते हैं वे अगर उनसे भी प्राचीन आचार्यों एवं शास्त्रों को मान्य न करें और उनसे विपरीत या विरुद्ध चलें, तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ?

अंबड सन्यासी के अधिकार में सम्यग्दर्शन की बात ही आचार्य हस्तीमलजी ने अपने इतिहास में छिपाई है और उनके पूर्ववर्ति अमोलक ऋषि ने मनमाना कल्पित अर्थ किया है, उनके आदि पुरुष लौंकाशाह से इस स्थानकपंथ परम्परा की यही विशेषता रही है।

स्थानकपंथियों में कोई "बृहत् शांति स्तोत्र" को मूर्तिपूजा समर्थक पाठों की काँट-छाँट करके संक्षिप्त कर रहा है, तो कोई विद्यावन्त चारणमुनियों का नंदोश्वर आदि द्वीप में सैर-सफर हेतु जाने का लिख रहा है, तो कोई आगम सूत्रों का मनचाहा अंट-शंट अर्थ कर रहा है, तो कोई परमार्थ नहीं जानते हुए भी "घंटाकर्ण महावीर"

नाम के यक्ष का मंत्र-जंत्र छपवा रहा है, तो कोई आलू, बासी, मक्खन आदि अभक्ष्य का भक्षण करने पर भी दया धर्म की बांग पुकार रहा है, तो कोई श्री महावीर स्वामी आदि की मुँहपत्ती बंधी हुई तस्वीर-फोटो छपवाकर बँटवा रहा है, तो कोई निज की तस्वीर युक्त लोकेट अपने भक्तों को दे रहा है, यह कितना असामंजस्य ?

> तप संयम किरिया करो, मन राखो ठाम।
> समकित बिन निष्फल हुए, जिम व्योम चित्राम ॥
>
> —पूज्यपाद ज्ञानविमलसूरिजी महाराज साहब

[प्रकरण-१८]

दशपूर्वधर श्री वज्रस्वामी के विषय में पक्षपात

धनगिरि ने अपनी सगर्भा पत्नी को छोड़कर पूज्य आर्य श्री सिंहगिरिजी से दीक्षा ली थी। जन्म के बाद अपने पिता की दीक्षा की बात सुनकर बालक को जाति स्मरण ज्ञान हो गया और माता से छुटकारा पाने के लिये उसने दिन रात रोना शुरू किया। परेशान माता ने अपने पुत्र को धनगिरि को सौंप दिया। गुरु आर्य श्री सिंहगिरिजी ने भारी वजन होने के कारण बालक का नाम वज्र रखा। बालक वज्र ने साध्वीजी के उपाश्रय में रहते रहते साध्वियों द्वारा रटाते हुए शास्त्र पाठों को सुन सुनकर ग्यारह अंग कंठस्थ कर लिये। बालक वज्र को बाद में आर्य श्री धनगिरि ने दीक्षा दी। आपने क्रम से श्री भद्रगुप्ताचार्य के पास १० पूर्व का अध्ययन किया और आर्य श्री धनगिरिजी ने आपको अपना पट्टधर बनाया। आपको आकाशगामिनी लब्धि थी, जिसके प्रयोग से आप समस्त श्री जैनसंघ को पट्ट पर बैठाकर दुर्भिक्ष क्षेत्र से सुभिक्ष के क्षेत्र में लाये थे। उस सुभिक्ष क्षेत्र का राजा बौधधर्मी था, जो जैनधर्मावलम्बियों से द्वेष रखता था। पवित्र पर्युषणा पर्व में तीर्थंकर परमात्मा के पूजन हेतु पुष्प चाहिए थे, जिनको देने के लिये बौद्ध राजा ने मना कर दिया था। तब आर्य श्री वज्रस्वामी विद्या द्वारा आकाश मार्ग से हिमवंत पर्वत पर गये और श्री देवी के

पास से कमल तथा पितृमित्र देव के पास से बीस लाख पुष्प लाकर प्रतिस्पर्द्धि बौद्धों के सामने जैन धर्म की प्रभावना करते हुए शासनोन्नति का महान कार्य किया था। इस शासन प्रभावना से प्रभावित होकर बौद्धराजा एवं अन्य प्रजा भी जैनधर्मी बन गये थे।

दशपूर्वधर शासन प्रभावक महान जैनाचार्य श्री वज्रस्वामी के विषय में खंड २, पृ० ५७८ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

✡✡✡ आपने आकाशगामिनी विद्या का प्रयोग करके संघ को सुभिक्ष में पहुँचाया था। वहाँ का राजा बौद्धधर्मानुयायी होने के कारण जैन उपासकों के साथ विरोध रखता था, पर आर्यवज्र के प्रभाव से वह भी श्रावक बना और इससे धर्म की बड़ी प्रभावना हुई। ✡✡✡

मीमांसा—देखिये! यहाँ कैसा गोल-मोल एवं अप्रमाणिक लिखा गया है। बौद्धराजा पर आर्य श्री वज्रस्वामी का कौन सा प्रभाव पड़ा था, जिसके कारण बौद्धधर्म को छोड़कर वह जैनधर्मी बन गया। इस तथ्य को संदिग्ध रखकर आचार्य ने अपनी पुरानी खासियत के मुताबिक जिनमूर्तिपूजादि के विषय में सत्य से ही अनादर किया है। क्योंकि बौद्ध राजा के जैनधर्मी बनने के पीछे आर्य श्री वज्रस्वामी का आगाशगामिनी विद्या द्वारा आकाशमार्ग से जाकर श्रीदेवी के पास से पद्म एवं पितृमित्र देव के पास से २० लाख पुष्प लाना आदि कारण है यह सत्य है। जिन मंदिर और जिनप्रतिमापूजा के विषय में मतिभ्रम और सम्मोह के कारण स्थानकपंथी कभी भी सत्य नहीं लिख सकते हैं।

फिर भी आर्य श्री वज्रस्वामी आकाशगामिनी विद्या से आकाश मार्ग से भगवान की पुष्पपूजा हेतु पुष्प लाये थे और जैनमतावलम्बियों के मनोरथों की पूर्ति की थी। इस तथ्य का

स्वीकार आचार्य द्वारा दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा की साम्यता दिखाने के अवसर पर अनायास ही हो गया है। खंड २, पृ० ५८५ पर आचार्य लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ आर्य वज्र के गगन विहारी होने, जैनों के साथ बौद्धों द्वारा की गयी धार्मिक उत्सव विषयक प्रतिस्पर्धा में आर्यवज्र द्वारा जैनधर्माव-लम्बियों के मनोरथों की पूर्ति के साथ जिनशासन की महिमा बढ़ाने आदि आर्य-वज्र के जीवन की घटनाओं एवं सम्पूर्ण कथावस्तु की मूल आत्मा में दोनों परम्पराओं की पर्याप्त साम्यता है। ❂ ❂ ❂

मीमांसा—आर्य श्री वज्रस्वामी गगन विहारी क्यों हुए? जैन और बौद्धों में कौनसे धार्मिक विषय में प्रतिस्पर्धा हुई? आर्य श्री वज्रस्वामी ने जैनधर्मावलम्बियों के कौन से मनोरथों की पूर्ति की थी? दोनों परम्परा में दिगम्बर और श्वेताम्बर आते हैं जो मूर्तिपूजा में विश्वास रखते हैं, फिर स्थानकपंथियों का स्थान कहां है? आदि अनेक प्रश्नों को आचार्य ने अस्पष्ट ही रखा है, जो अनुचित ही है।

यहां आचार्य ने धार्मिक उत्सव विषयक प्रतिस्पर्धा का उल्लेख किया है, किन्तु हिम्मत और सत्यता पूर्वक यह नहीं लिखा कि बौद्धराजा ने जैनियों को पर्युषणा पर्व में जिनप्रतिमा की पूजा हेतु पुष्प देने की मना करदी थी। तब आर्य श्री वज्रस्वामी ने जैनधर्मावलम्बियों के मनोरथ की पूर्ति आकाशगामिनी विद्या द्वारा पुष्प लाकर की थी। इससे प्रभावित होकर बौद्धधर्मी राजा एवं प्रजा जैनधर्मी बने थे, इस सत्य तथ्य को आचार्य ने छिपाया है। एक बात और भी है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों जैन परम्परा मूर्तिपूजा में विश्वास करती है, अतः श्री वज्रस्वामी के कथानक में दोनों परम्पराओं की साम्यता होना स्वाभाविक ही है। किन्तु इन दोनों परम्परा की श्रद्धा से विपरीत श्रद्धा स्थानकपंथी की हैं, अतः वे अपने आप ही जैनाभास

सिद्ध हो जाते हैं, ऐसी दशा में वे लोग जैनधर्म के मूल से सम्बन्धित जिनमूर्ति और जिनमूर्तिपूजा की प्राचीनता एवं सत्यता का समर्थन क्यों करेंगे ?

यहाँ वही पुरानी लकीर के फकीर बनकर आचार्य हस्तीमलजी ने महान जैनाचार्य १० पूर्वधर आर्य श्री वज्रस्वामी के चरित्र को मूर्तिपूजा से संबंधित होने के कारण अप्रमाणिक लिखा है और सत्य को तोड़-मरोड़ करके प्रस्तुत किया है। इससे जैन इतिहास लेखन के सम्बन्ध में की हुई उनकी तटस्थता और सत्यता की प्रतिज्ञा का सर्वथा भंग ही हुआ है, जो अत्यन्त खेदजनक है।

जिसको जैनागम हृदयंगम नहीं हुए हैं, वह चाहे आचार्य पदाधिरूढ़ क्यों न हों, जैन सिद्धान्त का दुश्मन ही है, क्योंकि जैनागम के विषय में वह दिङ्मूढ़ है।

—आगमेतर सबसे प्राचीन शास्त्र श्री उपदेशमाला

अति प्राचीन भव्य जिन प्रतिमा

[प्रकरण–१९]

जैनधर्म और आडम्बर

चातुर्मास में दर्शनार्थियों के लिए चौका लगवाने की प्रेरणा करना, निज की प्रतिष्ठा एवं प्रदर्शन हेतु कोसों की दूरी से भक्तजनों को दर्शन के बहाने बुलाना, निज की तस्वीरें छपवाना-बँटवाना, पत्रिका एवं साप्ताहिक पत्र आदि निकालना, श्रावकों का सम्मेलन करवाना, उपाश्रय-स्थानक बनवाना, गोठ-प्रीतिभोज करवाना, नारियल आदि की प्रभावना बँटवाना, अपने गुरु का जन्मदिन मनवाना तथा इस हेतु पत्रिका छपवाना आदि अनेक बाह्य क्रियाकांड और बाह्य आडम्बर करने में हिंसा और पाप नहीं मानने वाले दयाधर्म के ठेकेदार (!) स्थानकपंथियों जिनमन्दिर निर्माण, जिन प्रतिमा प्रतिष्ठा, जिन प्रतिमा पूजा, सिद्धचक्र आदि पूजन, स्नात्र पूजा, स्वामी वात्सल्य, तीर्थयात्रा, यात्रासंघ, जलयात्रा का जलूस आदि जैनधर्म सम्बन्धित प्राचीन और जैनशासनोन्नतिकारी जैन शास्त्र कथित पवित्र क्रियाओं को मनभर के कोसते हैं और बाह्य आडम्बर कहकर उनका अनादर एवं अपलाप करते हैं, यह अत्यन्त गलत कृत्य है ।

वैसे देखा जाए तो जिस क्रियादि को आचार्य हस्तीमलजी अपनी "सिद्धान्त प्रश्नोत्तरी" नामक किताब में बाह्य आडम्बर और बाह्य क्रियाकांड कहते हैं, वह जैनधर्म की कौनसी प्रवृत्ति में नहीं है ! तीर्थंकर परमात्मा का समवसरण में रत्न के सिंहासन पर बैठना, नव-

कमल पर चलना आदि क्रियाएँ क्या बाह्य आडम्बर नहीं है? देवों द्वारा होती पुष्पवृष्टि, चँवर ढुलाना तथा सूर्याभदेव और जीणकुमारियों का नाटक आदि भगवान श्री तीर्थंकर की मौजूदगी में भी होता था, इन प्रवृत्तियों को आप्त भगवान ने बाह्य आडम्बर कहकर हेय या त्याज्य नहीं कहा है।

आचार्य श्री मानतुंग सूरि महाराज ने भी "भक्तामर स्तोत्र" श्लोक–३३ में तीर्थंकरों के बाह्याडम्बर-ठाठ-शोभा-विभूति का वर्णन किया है, यथा—

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र।
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ॥

महान तत्त्व ज्ञानियों ने इस बाह्याडम्बर को भी अन्य जैनेतर भद्रक भव्य जीवों को जैनधर्म के प्रति आकर्षण करने और जैनधर्म प्रेमी बनाने के लिये प्रबल हेतु माना है।

मगध सम्राट श्रेणिक, कूणिक, दर्शाणभद्र आदि बड़े बड़े राजा महाराजा भी भगवान के दर्शन हेतु बड़े ठाट बाट के साथ गये हैं। और यह पूर्ण सत्य है कि आप्त भगवान ने कभी भी इनको आडम्बर की संज्ञा नहीं दी है।

खंड १, पृ० ६१७ पर आचार्य लिखते हैं कि—

राजा श्रेणिक को भगवान पधारने की सूचना मिली तो वे राजसी शोभा में अपने अधिकारियों, अनुचरों और पुत्रों आदि के साथ भगवान की वन्दना करने को निकले और विधिपूर्वक वंदन कर सेवा करने लगे।

मीमांसा—श्रेणिक का राजसी वैभव से जाने में मार्गगमन जन्य हिंसा तो हुई ही होगी, फिर आप्त भगवान ने क्यों नहीं कह दिया कि—"यह दयाधर्म के सिद्धान्त के विरुद्ध है।" यदि भगवान एक बार श्रेणिक जैसे विनयवन्त भक्त को निषेध कर देते तो अन्य राजा कभी वंदन हेतु ऐसे आडम्बर सहित नहीं जाते।

राजा दर्शाणभद्र ने सर्वश्रेष्ठ शोभा के साथ भगवान की वन्दना के लिये जाने की सोची और इन्द्र ने उनकी सर्वश्रेष्ठ शोभा का गर्व चूर कर दिया, बाद में उसने चारित्र-दीक्षा ली। खंड १, पृ० ६५८ पर आचार्य लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ उसने (दर्शाणभद्र ने) बड़ी धामधूम से प्रभु वन्दन की तैयारी की और चतुरंग सेना व राज परिवार सहित सजधज कर वन्दन को निकला। ❂ ❂ ❂

मीमांसा—धूमधाम और सजधज कर यानी बाह्याडम्बर से जाने की प्रवृत्ति को जैन शास्त्रों में कहीं भी अनुचित नहीं ठहराया है, दयाधर्मियों को यह विचारने की बात है।

खंड १, पृ० ७४५ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ तदनन्तर कूणिक ने अपने नगर में घोषणा करवाकर नागरिकों को प्रभु के शुभागमन के सुसंवाद से अवगत कराया और अपने समस्त अन्तःपुर, परिजन, पुरजन, अधिकारी वर्ग एवं चतुरंगिणी सेना के साथ प्रभुदर्शन के लिये प्रस्थान किया। ❂ ❂ ❂

मीमांसा—आप्त भगवान ने एवं प्राचीन शास्त्रकारों ने जैनधर्म के प्रचार, प्रसार एवं उन्नतिकारक ऐसी प्रवृत्तियों को कभी भी

बाह्याडम्बर नहीं कहा है। बस एवं रेल में बैठकर सैंकड़ों मीलों की दूरी से वंदनार्थ आने वाले भक्तों को आचार्य हस्तीमलजी ने क्या कभी रोका है? कि—"वाहन आदि से आने में महापाप यानी हिंसा होती है, अत: सच्चे मन से या भाव से मेरी वन्दना वहां घर पर बैठे हुए ही करलो, इतने सैंकड़ों मीलों की दूरी से आना हिंसा, अधर्म, पाप और बाह्याडम्बर है।"

सम्प्रदाय के मोह बन्धन में फँसकर या अपनी मनकल्पित हिंसा का शोर-शराबा करके जैनधर्म के प्रचार प्रसार की शुभ प्रवृत्तियों को भी बाह्याडम्बर या बाह्य क्रियाकान्ड कहकर निन्दा करने वाले दयाधर्मियों (!) को निज की करणी और कथनी जांचनी चाहिए। और अगर इसमें बाह्याडम्बर और हिंसा आदि होवे तो ईमानदारी पूर्वक उनको त्यागना चाहिए।

खंड १ (पुरानी आवृत्ति) पृ० ७० पर आचार्य लिखते हैं कि—

✲ ✲ ✲ खेद है कि हम अपनी दृष्टि से किसी भी विषय के अन्तस्तल तक नहीं पहुँचते और पुरानी लकीर के ही फकीर बने हुए हैं। ✲ ✲ ✲

मीमांसा—हमारा भी यही कथन है कि पुरानी लकीर के फकीर बने रहने के लिये उन्हें कौन बाध्य करता है? जिनमन्दिर, स्नात्रपूजा और तीर्थयात्रादि प्रवृत्तियों को हिंसा एवं बाह्याडम्बर कहकर विरोध करने वालों और "आरम्भे नत्थि दया" यानी "हिंसा रूप आरम्भ में दया नहीं है" ऐसा आगे पीछे का संदर्भ रहित ऐकान्तिक वचन बोलने वालों की किताब छपवाना, कबूतरों को चुग्गा डालना, अपनी तस्वीर छपवाना, भक्तजनों को मीलों की दूरी से दर्शनार्थ

बुलवाना, उनके निमित्त चौका-चलाने की प्रेरणा देना, नारियल आदि की प्रभावना बाँटना, गोठ-प्रीतिभोज करवाना आदि प्रवृत्तियाँ दयामय धर्म से प्रेरित है या हिंसामय धर्म से ? इसमें बाह्याडम्बर है कि जैन-शासनोन्नति है ? आश्रव-पाप है या धर्म-संवर ? इन प्रश्नों का आचार्य स्वयं को प्रामाणिक एवं शास्त्रीय उत्तर देना चाहिए।

भगवान की आज्ञा के आदर से मोक्ष
और अनादर से संसार होता है।

—कलिकाल सर्वज्ञ पूज्य हेमचन्द्राचार्य म०

[प्रकरण-२०]

नमो बंभीए लिवीए

यद्यपि शास्त्र स्वयं मंगल स्वरूप हैं, फिर भी विघ्नों की शान्ति हेतु पूर्वाचार्यों ने शास्त्र के आदि, मध्य एवं अन्त में लिपि में लिखकर भी द्रव्य और भाव मंगल की प्रशस्त प्रवृत्ति की है।

श्री भगवती सूत्र में स्वयं शास्त्रकर्ता महर्षि ने "नमो बंभीए लिवीए"—यानी बाह्मी लिपि को नमस्कार—ऐसा लिखकर द्रव्य-भाव मंगल किया है। किन्तु स्थापना निक्षेप को द्रव्य-भाव मंगल स्वरूप न मानने वाले स्थानकपंथी आचार्य हस्तीमलजी शास्त्रकर्ता के इस कथन पर स्वमान्यता विरोध के कारण बहुत रुष्ट हैं। पूज्य शास्त्रकार महर्षि के उक्त कथन को झूठा करने हेतु आचार्य ने बहुत सी प्राचीन प्रतियां भी ढूंढ डाली हैं, ऐसा उन्होंने खंड २, पृ० १७०-१७१ पर स्वीकार भी किया है, किन्तु उन्हें कहीं पर कोई विरोध का अंश नहीं मिला। अगर कहीं एक प्रति में भी विरोध का अल्पसा आधार मिल जाता तो क्या था ? आचार्य हो-हा का शोर करने में ही अपना श्रेय समझते, किन्तु उनका यह प्रयास भी असफल ही रहा। अंततो गत्वा असत्य का सहारा लेकर खंड २, पृ० १७० पर आचार्य व्यर्थ की कल्पित कल्पनाएँ करते हैं कि—

"हो सकता है शास्त्र लिपिबद्ध हुए होंगे तब पीछे से "नमो बंभीए लिवीए" पाठ मध्य में घुसा दिया होगा।"

मीमांसा—आचार्य का यह कैसा भद्दा तर्क है कि—"पूर्वाचार्यों ने बेईमानी करके "नमो बंभीए लिवीए" इस पाठ को श्री भगवती सूत्र में घुसा दिया होगा," किन्तु आचार्य का ऐसा लिखना अल्पज्ञता का ही सूचक है। पूर्वाचार्यों के कथन पर "सिद्धस्य गतिर्चिंतनीया:" इस उक्ति को आचार्य हस्तीमलजी क्यों मान्य नहीं करते हैं? श्री भगवती सूत्र कथित आदि एवं अन्तिम मंगल के विषय में आचार्य खंड २, पृ० १७० पर इस प्रकार लिखते हैं कि—

द्वादशांगी के पांचवें अंग "व्याख्या प्रज्ञप्ति (अपरनाम श्रीमती भगवती सूत्र) की आदि में "पंच परमेष्ठी नमस्कार मंत्र" 'णमो बंभीए लिवीए' और "णमो सुयस्स" पद से मंगल किया है और अन्त में संघ स्तुति के पश्चात् गौतमादि गणधरों, भगवती व्याख्या प्रज्ञप्ति, द्वादशांगी रूप गणिपिटक, श्रुत देवता, प्रवचन देवी, कुम्भधर यक्ष, ब्रह्मशांति, वैराटया देवी, विद्यादेवी और अंतहुडी को नमस्कार किया गया है।

मीमांसा—परमपूज्य सूत्रकार महर्षि ने "नमो बंभीए लिवीए" ऐसा लिखकर द्रव्य-भाव मंगल-स्वरूप मानकर लिपि को भी नमस्कार किया है। इस सूत्र की व्याख्या-टीका लिखने वाले धुरंधर-विद्वान नवांगी टीकाकार पूज्यपाद अभयदेवसूरिजी महाराज ने भी सूत्रकार महर्षि द्वारा किये गये मंगल के अनुरूप ही टीका रची है, कि—"नमो बंभीए लिवीए" ऐसा शास्त्रकार द्वारा मंगल किया गया है और प्राचीन प्रतियों में भी इसी प्रकार का पाठ मिलता है। इन सब बातों से स्पष्ट सिद्ध है कि स्थापना निक्षेप रूप ब्राह्मी लिपि को भी शास्त्रकार महर्षि ने द्रव्य भाव मंगल स्वरूप माना है। फिर भी इस निःसन्देह सत्य तथ्य पर भी आचार्य ने खंड २, पृ० १७० से १७२ तक में लम्बी-चौड़ी मनघडंत कल्पना चलायी है, और पूर्वाचार्यों को झूठा करने का दुस्साहस किया है कि—

✵✵✵ हो सकता है शास्त्र लिपिबद्ध हुए होंगे तब पीछे से "नमो बंभीए लिवीए" पाठ शास्त्र में घुसा दिया होगा। ✵✵✵

मीमांसा—बात तो यह है कि 'हो सकता है' ऐसा लिखना इतिहास के लेखन में सर्वथा अप्रामाणिक एवं निरर्थक ही है, यह बात इतिहासज्ञाभास भूलें इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

"तस्वीर सिर्फ परिचय के लिये" यानी तस्वीर को वंदनादि करोगे तो मिथ्यात्व का पाप लगेगा ऐसा कहने वालों को श्री भगवती सूत्रकर्ता एवं टीकाकर्ता पूर्व महर्षि का कथन "नमो बंभीए लिवीए" पर विचार करके स्थापना विषयक सत्य के मार्ग को प्रामाणिकता-पूर्वक स्वीकार करना चाहिए।

टीका चूर्णि भाष्य उवेख्या, उवेखी निर्युक्ति।
प्रतिमा कारण सूत्र उवेख्या, दूर रही तुझ मुक्ति।।

—न्यायविशारद पूज्य यशोविजयजी उपाध्याय

अलौकिक श्री पार्श्वनाथ भगवान

हसामपुरा, उज्जैन [म. प्र.]

[विक्रम की १० वीं सदी पूर्व]

[प्रकरण–२१]

चैत्य यानी जिनमंदिर या जिनप्रतिमा

चैत्य शब्द का अर्थ जिनमन्दिर अथवा जिनप्रतिमा ऐसा होता है। स्थानकपंथी लोग गुरुवंदन के 'तिक्खुत्ता" नामक पाठ में "देवयं चेइयं पज्जुवासामि" ऐसा बोलते हैं। किन्तु "चेइयं" शब्द का अर्थ वे गलत करते हैं। 'चेइयं' यानी "चैत्य" शब्द का अर्थ स्थानकपंथी सन्तों द्वारा विविध पुस्तकों में विविध किया गया है। 'चेइयं पज्जुवासामि" का शास्त्रीय अर्थ "जिनप्रतिमा की तरह मैं (गुरु की) उपासना करता हूं," ऐसा होता है। एक इतिहासकार के नाते आचार्य हस्तीमलजी को आगमशास्त्रों, आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य, वृत्ति, चूर्णि, भाष्य तथा टीकादि और शब्दकोष-व्याकरण के सहारे से स्वमान्यता को दूर रखकर तटस्थता एवं प्रामाणिकता से 'चेइयं' यानी 'चैत्य' शब्द का अर्थ करना अत्यन्त आवश्यक था किन्तु इस विषय में आचार्य ने अंधेरे में ही रहना उचित समझा है और ऐसा करके उन्होंने अपने इतिहास को भी अपूर्ण रखा है। फिर भी खंड २, पृ० ६२३ से ६२८ तक आचार्य ने "चैत्यवास" के विषय में चैत्य का अर्थ नहीं करके ही लम्बी चौड़ी निरर्थक चर्चा चलायी है। किन्तु 'चैत्य' का अर्थ "जिनमंदिर" होता है इस तथ्य की पुष्टि उनसे मानों या न मानों हो ही गयी है।

जैनागमों में जहाँ भी चैत्य शब्द आता है, वहाँ स्थानकपंथी संत आदि चैत्य शब्द का जिन प्रतिमा और जिनमंदिर ऐसा प्रकरण

सुलभ अर्थ को छोड़कर, एकान्तमार्ग का आश्रय करके चैत्य का अर्थ कहीं ज्ञान, कहीं साधु, कहीं कामदेव की प्रतिमा आदि कर देते हैं, जो अप्रमाणिक है। ज्ञान के लिये शास्त्र में कहीं भी चैत्य शब्द नहीं लिखा है, कि मतिचैत्य, श्रुतचैत्य इत्यादि। एवं शब्दकोष और व्याकरण में साधु के लिये निर्ग्रन्थ, श्रमण, मुनि आदि शब्द प्रसिद्ध है न कि चैत्य।

पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज ने कोष में 'चैत्य' शब्द का अर्थ जिनप्रतिमा एवं जिनमंदिर किया है, यथा—

"चैत्यं जिन बिम्बं तदौकः।"

"अरिहंत चेइयाणं" शब्द का अर्थ श्री आवश्यक सूत्र के पाँचवें कायोत्सर्ग नामक अध्ययन में 'जिन प्रतिमा' ऐसा किया है, यथा—

"अर्हन्त: तीर्थंकरा:, तेषां चैत्यानि प्रतिमालक्षणानि"।

नवांगी टीकाकार पूज्य श्री अभयदेवसूरिजी महाराज ने 'चैत्य' शब्द का अर्थ "इष्ट देव की प्रतिमा" ऐसा किया है। यथा—

"चैत्यम् इष्टदेव प्रतिमा" [भगवती सूत्र, शतक २, उद्देश १]

प्रवचन सारोद्धार की वृत्ति में तथा सूर्य प्रज्ञप्ति में चैत्य का अर्थ जिनप्रतिमा तथा उपचार से जिनमंदिर ऐसा किया है।

आचार्य हस्तीमलजी ने चैत्य शब्द का शास्त्र कथित अर्थ ढूंढा होता तो स्वयं को और अन्य को भ्रम में रखने का पर्दा फाश हो सकता था।

स्थानकपंथी संत एवं पंडित चैत्य शब्द का अर्थ करने में कैसी दगाबाजी करते हैं यह देखिये। श्री उववाई सूत्र में अंबड श्रावक का अधिकार आता है, जो पहिले सन्यासी था। जब श्री महवीर स्वामी के समक्ष बारह व्रत धारण किये तब उसने बारह व्रत रूप महल की नींव के समान 'सम्यग्दर्शन व्रत' सर्वप्रथम स्वीकार किया था। वह श्री महावीर भगवान के सामने यह प्रतिज्ञा करता है कि—

❂ ❂ ❂ णण्णत्थ अरिहंते वा अरिहंत चेइयाणि वा वंदिता वा नमंसंति वा।

[श्री उववाई सूत्र] ❂ ❂ ❂

अर्थात्—वीतराग श्री अरिहंत तथा अरिहंत का (चैत्य यानी) जिन प्रतिमा वांदवा कल्पे अन्य नहीं।

उक्त सूत्र का स्थानकपंथी संत अमोलक ऋषि अप्रमाणिक एवं व्याकरण और शब्द कोष निरपेक्ष अर्थ करते हैं कि—

❂ ❂ ❂ फक्त अरिहंत और अरिहंत के [चैत्य यानी] साधु को ही वन्दन करना, नमस्कार करना यावत् सेवाभक्ति करना कल्पता है। [उववाई सूत्र, हिन्दी अनुवाद, पृ० १६३] ❂ ❂ ❂

मीमांसा—यहां चैत्य का कल्पित अर्थ साधु किया है, जो स्वमतिकल्पित एवं शास्त्र निरपेक्ष है। क्योंकि श्री भगवती सूत्र में असुरकुमार देवता सौधर्म देवलोक में जाते हैं, तब एक अरिहंत दूसरा चैत्य अर्थात् जिनप्रतिमा और तीसरा अनगार यानी साधु (मुनि) इन तीनों का शरण करते हैं ऐसा कहा है, यत.—

❂ ❂ ❂ नन्नत्थ अरिहंते वा अरिहंत चेइयाणि वा भावी अप्पणो अणगारस्स वाणिस्साव उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो। ❂ ❂ ❂

इस पाठ में (१) अरिहंत (२) चैत्य और (३) अनगार, यह तीन का शरण कहा है। यदि चैत्य शब्द का अर्थ साधु होता तो 'अनगार' शब्द पृथक् क्यों कहा ? अतः चैत्य का अर्थ साधु (मुनि) करने वाले स्थानकपंथी झूठे साबित होते हैं।

चैत्य शब्द का दूसरा कल्पित अर्थ अमोलक ऋषि 'ज्ञान' करते हैं, यह भी देखिये। श्री भगवती सूत्र में गणधर श्री गौतमस्वामी तीर्थंकर महावीर स्वामी को चारणमुनि के उत्पात [विद्याबल से छलांग लगाने की शक्ति) के विषय में पूछते हैं कि –

"विज्जाचारणस्स भंते ! उड्ढं केवइए गइ विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से णं इत्तो एगेणं उप्पाएणं णंदणवणे समोसरणं करई, करित्ता तहिं चेइयाइं वंदइ, वंदइत्ता बितिएणं उप्पाएणं पंडगवणे समोसरणं करई, करित्ता तहिं चेइयाइं वंदई, वंदइत्ता तओ पडिणियत्तई, पडिणियइत्ता, इहमागच्छई, इहमागच्छित्ता इह चेइयाइं वंदई। विज्जाचारणस्स णं गोयमा ! उड्ढं एवइए गई विसए पण्णत्ते।" [भगवती सूत्र–शतक २०, उद्देश ९]

उक्त सूत्र का शास्त्रोक्त अर्थ –"हे भगवन् ! विद्याचारण लब्धिवाले मुनियों का ऊर्ध्व में गमन का कितना विषय कहा है ? [भगवान श्री महावीर स्वामी उत्तर देते हैं कि—] हे गौतम ! विद्याचारण मुनि यहां से एक उत्पात में नंदनवन में विश्राम लेवे, वहां के चैत्य यानी जिनबिंब [प्रतिमा] को वान्दे, वहाँ के जिनचैत्य (जिनबिम्ब) को वन्दन करके (पर्युपासना करके) पंडकवन में जाए, वहां चैत्य यानी जिनबिंब को वन्दन करके (पर्युपासना करके) फिर स्वस्थान लौटे और स्वस्थान के (मध्यलोक के अशाश्वत) जिनबिम्ब

[प्रतिमा] को वान्दे । हे गौतम ! विद्याचारण के विषय में ऊर्ध्वगमन का इतना विषय है ।"

उक्त सूत्र का स्थानकपंथी संत अमोलक ऋषि आगमनिरपेक्ष एवं स्वमति कल्पित अर्थ इस प्रकार करते हैं—

❂ ❂ ❂ गौतम का प्रश्न—हे भगवन् ! विद्याचारण का ऊर्ध्व गमन का कितना विषय कहा है ?

अहो गौतम ! विद्याचारण मुनि एक उत्पात में यहाँ से उड़कर मेरु-पर्वत के नन्दन वन में विश्राम लेवे । वहां (चैत्य यानी) "ज्ञानी के ज्ञान" का गुणानुवाद करे (?) वहां से दूसरे उत्पात में पंडकवन में समवसरण करे (विश्राम लेवे) वहां पर भी ज्ञानी के ज्ञान का गुणानुवाद करे (?) और वहाँ से भी पीच्छा अपने स्थान पर आवे । अहो गौतम ! विद्याचारण मुनि का ऊर्ध्वगमन का इतना विषय है । ❂ ❂ ❂

मीमांसा—स्थानकपंथी संत अमोलक ऋषि ने उक्त प्राकृत सूत्र का "इह चेइयाइं वंदई" [यानी यहाँ आकर अशाश्वत जिनमन्दिर को वान्दे] इतने शब्दों का हिन्दी अनुवाद करना ही छोड़ दिया है जिससे उनकी बेईमानी जाहिर होती है ।

अमोलक मुनिजी ज्ञानियों के अरूपी ज्ञान के वन्दन हेतु चारणमुनियों को पंडकवन और नन्दनवन में भेज रहे हैं, मानों पंडकवन और नंदनवन में ज्ञानी के ज्ञान के ढेर पड़े होंगे । पंडकवन और नंदनवन में शाश्वत जिन मन्दिर है, इस तथ्य की सिद्धि न होने पाए, इस कारण अमोलक ऋषिजी असत्य का सहारा लेकर चैत्य का अर्थ ज्ञान करते हैं जो सर्वथा अप्रमाणिक है । स्थानकपंथी अमोलक ऋषि की साहसिकता देखिये कि ज्ञानी के अरूपी ज्ञान के वन्दन हेतु पंडकवन और नन्दनवन में

भेजकर महाज्ञानी चारणमुनियों को भी वे उल्लू बना रहे हैं। क्या चारणमुनि इतने मूर्ख हैं कि अरूपी ज्ञान का यहां बैठे बैठे वंदन न करके लब्धि का प्रयोग करके वहाँ जाए ? और नंदनवन एवं पंडकवन में जाने हेतु लब्धि का प्रयोग करने पर भी क्या वहाँ ज्ञानी के ज्ञान के भंडार भरे पड़े हैं कि गुणानुवाद करने हेतु इतने योजनों की लम्बी यात्रा करें।

पंडकवन और नंदीश्वर द्वीप स्थित शाश्वत जिन मन्दिरों में चारण मुनि जाते हैं और वहां चैत्यवंदन करते हैं इस शास्त्रीय तथ्य को सत्य होता देखकर नितांत असत्य का सहारा लेकर स्थानकपंथी महा विद्वान रतनलालजी डोशी (शैलावा वाले) "जैनागम विरुद्ध मूर्तिपूजा भाग-१" पृ० १६६ पर महा साहस पूर्वक लिखते हैं कि—

✲ ✲ ✲ हमारे विचार से [चारणमुनि का] वहां जाने का मुख्य कारण नंदनवन को "सैर" करने का ही हो सकता है, क्योंकि यह भी एक छद्मस्थता की पलटती हुई चञ्चल विचार धारा का परिणाम है। ✲ ✲ ✲

मीमांसा—स्थानकपंथी महापंडित रतनलालजी की छद्मस्थता की पलटती हुई चंचल विचारधारा का परिणाम देखिये कि वे पंडितजी छट्ठे और सातवें गुणस्थानक में स्थित, महासंयमी-ज्ञानी चारण मुनियों को पंडकवन और नंदीश्वर द्वीप में सैर-सफर के लिये भेजने की मूर्खता कर रहे हैं और चारणमुनियों की नंदीश्वर द्वीपादि में जाने की प्रवृत्ति को छद्मस्थता की चंचलधारा का परिणाम कहने पर तो, तीर्थंकरों और केवलज्ञानियों को छोड़कर अन्य सब ज्ञानियों की प्रवृत्तियाँ गलत कहने की अज्ञानता भी वे पंडितजी कर रहे हैं।

वास्तव में चाहे अमोलक ऋषिजी हों, चाहे आचार्य हस्ती-मलजी हों या पंडित रतनलालजी डोशी हों, सभी स्थानकपंथी ही

दृष्टिराग के पूर्वग्रह से ग्रसित एवं मिथ्यात्व के रंग से ऐसे रंगे हुए हैं कि वे सिद्धायतन, जिनचैत्य, जिनमंदिर आदि की बात आने पर सत्य का पक्ष छोड़कर जल्दी से झूठ का ही सहारा लेने पर उतारू हो जाते हैं।

श्री महावीर स्वामी के शासन में वीर संवत् ८८२ से ऐसा समय आया कि कितनेक जैन मुनि शिथिलाचारी बन गये, मंदिर संबंधित द्रव्य यानी "देवद्रव्य" का भक्षण करने लगे, उनकी विहार आदि की चर्या शिथिल हो गई! वे जिनमन्दिर में ही रहने लगे इस कारण वे "चैत्यवासी" कहलाये।

आचार्य हस्तीमलजी ने जैनधर्म का मौलिक इतिहास, खंड २, पृ० ६२३ से ६२८ तक चैत्यवास के विषय में लम्बी-चौड़ी वार्ता की है, किन्तु 'चैत्य' का अर्थ उन्होंने अस्पष्ट और संदिग्ध ही रखा है। पृ० ६२४ पर वे लिखते हैं कि—

इसका (चैत्यवास का) प्रारम्भ वीर संवत् ८८२ में हो गया। *यद्यपि उस समय वन के बदले मुनि लोग वसति के चैत्य और उपाश्रय* में उतरते थे, किन्तु वहां वे स्थानपति होकर नहीं रहते थे। चैत्यवसति में उतरने पर भी वे सतत विहारी होने के कारण विहरूक कहलाते थे।

मीमांसा—इतिहासकार आचार्य ने यहाँ कैसा उटपटांग और अस्पष्ट लिखा है? एवं "चैत्य" तथा "चैत्यवसति" शब्द का अर्थ करना तो आचार्य ने टाल ही दिया है। जिन मंदिर के शत्रु चैत्य शब्द का अर्थ 'जिन मंदिर' क्यों करेंगे?

परम सत्यप्रिय, १४४४ ग्रन्थों के रचयिता पूज्यपाद हरिभद्रसूरिजी महाराज के कथन का उद्धरण करके खंड २ पृ० ६२६ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

❋ ❋ ❋ ये साधु चैत्यों और मठों में रहते हैं। पूजा करने का आरम्भ एवं देवद्रव्य का उपभोग करते हैं। ❋ ❋ ❋

मीमांसा—मठ शब्द से आचार्य का क्या तात्पर्य है? और चैत्य शब्द का अर्थ यहां भी उन्होंने नहीं किया है। किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि उस समय भी जिनप्रतिमा, जिनमन्दिर और जिनपूजन प्रथा थी। और देवद्रव्य भी था इस सत्य तथ्य की ओर आंखें मूंद लेना अनुचित ही होगा। और यह भूलना नहीं चाहिए कि उस समय भी पूज्य हरिभद्रसूरिजी, पूज्य अभयदेवसूरिजी आदि सुविहित मुनि विद्यमान थे, जिन्होंने चैत्यवास सम्बन्धित शिथिलता का विरोध करते हुए भी जिनमन्दिर और जिनप्रतिमा आदि शास्त्र कथित प्रवृत्तियों की प्ररूपणा एवं पुष्टि की थी और प्रेरणा भी दी थी।

खंड २, पृ० ६२८ पर आचार्य लिखते हैं कि—

❋ ❋ ❋ उपलब्ध साहित्य के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि विक्रम संवत् १२८५ से "चैत्यवास" सर्वथा बन्द हो गया और मुनियों ने उपाश्रय में उतरना प्रारम्भ कर दिया। ❋ ❋ ❋

मीमांसा—हमारा तो इतना ही कहना है कि जिन सुविहित, आगमज्ञ मुनियों ने चैत्यवास सम्बन्धी शिथिलता को सामने टक्कर लेकर चैत्यवास को समाप्त किया था, उन्होंने ही जिनमन्दिर, देवद्रव्य, रक्षण आदि के विषय में प्रेरणा की थी। यानी जो सिरदर्द था उसे औषधि से मिटाया था, किन्तु सिर को काटने की मूर्खता इन सुविहित मुनियों ने नहीं की थी, इस सत्य तथ्य से आचार्य हस्तीमलजी अपरिचित नहीं होंगे।

साधवः शास्त्र चक्षुषः
साधुओं ज्ञान आँख से देखते हैं।

[प्रकरण–२२]

एक हास्यास्पद कल्पना

आधुनिक युग के उच्छृंखल चिन्तक जो प्राचीन जैनाचार्यों कथित चमत्कारपूर्ण घटनाओं में विश्वास नहीं करते हैं, उनके तुष्टि-करण हेतु आचार्य हस्तीमलजी ने पूर्वाचार्यों पर अविश्वास करने वाली साहसिकता का अवलम्बन कर खंड २ प्राक्कथन पृ० ३८ पर लिखा है कि—

❂ ❂ ❂ इसी प्रकार बहुत सी चमत्कारिक रूप से चित्रित घटनाओं को भी इस ग्रन्थ में समाविष्ट नहीं किया गया है। मध्ययुगीन अनेक विद्वान ग्रंथकारों ने सिद्धसेन प्रभृति कतिपय प्रभावक आचार्यों के जीवन चरित्र का आलेखन करते हुए उनके जीवन की कुछ ऐसी चमत्कारपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है, जिन पर आज के युग के अधिकांश चिन्तक किसी भी दशा में विश्वास करने को उद्यत नहीं होते। ❂ ❂ ❂

मीमांसा—पूज्यपाद् सिद्धसेन दिवाकर सूरिजी के "कल्याण-मन्दिर" नामक स्तोत्र के प्रभाव से शिवलिंग फटा था और उसमें से श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा निकली थी। जिनप्रतिमा की मान्यता का विरोध करने के कारण ही आचार्य हस्तीमलजी ने पूज्यपाद सिद्धसेन-सूरिजी आदि के विषय में ऐसा लिखा है कि चमत्कारिक घटना इस ग्रन्थ में नहीं लिखी गयी है। "चमत्कारिक घटनाओं को इस ग्रन्थ में समाविष्ट नहीं किया है," ऐसा आचार्य हस्तीमलजी का कथन सर्वथा झूठा

ही है। हाँ ! "जिनप्रतिमा" विषयक चमत्कार से स्वमतहानि के कारण ही आचार्य ने प्रस्तुत में असत्य एवं अप्रमाणिकता का सहारा लिया है। अन्यथा स्वयं आचार्य ने ही श्री पार्श्वनाथ भगवान के चरित्र में जीर्णकुमारी, चन्द्रगुप्त-चाणक्य का कथानक, श्रीमानतुंगसूरिजी का बेड़ी टूटना, सुभूम और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की आश्चर्य एवं चमत्कार-पूर्ण घटना का अपने इतिहास में समावेश किया है। इतना ही नहीं सगर चक्रवर्ती के ६० हजार पुत्रों की मौत पर पौराणिक किंवदन्ती स्वरूप गपोड़े को भी यही आचार्य महाशय ने प्रस्तुत किया है। अपि च नंदवंश की उत्पत्ति के अवसर पर आचार्य ने ही प्रतिज्ञा भंग करके चमत्कारिक घटना खंड २, पृ० २६८ पर प्रस्तुत की है, यथा—

❋ ❋ ❋ उदायी का राजछत्र भी स्वतः ही नन्द के मस्तक पर तन गया और नन्द के दोनों ओर मन्त्राधिष्ठित वे दोनों चामर स्वतः ही अदृश्य शक्ति से प्रेरित हो व्यजित होने लगे। ❋ ❋ ❋

एवं श्री मानतुंगसूरिजी के विषय में खंड–२, पृ० ६४६ पर आचार्य लिखते हैं कि—

❋ ❋ ❋ कमरों के द्वार स्वतः ही खुल गये, आचार्य मानतुंग के सभी बंधन कट गये। ❋ ❋ ❋

मीमांसा—आचार्य हस्तीमलजी द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त घटनाएँ क्या चमत्कारिक नहीं हैं ? क्या इन पर आचार्य के माने हुए आधुनिक चिंतक विश्वास करेंगे ? क्या उपरोक्त बातों से उनकी चमत्कारिक घटना प्रस्तुत नहीं करने की प्रतिज्ञा का भंग नहीं होता है ? जब चमत्कारपूर्ण घटनाएँ आचार्य ने अपने इतिहास में लिखी ही हैं, तो पूज्य सिद्धसेनसूरिजी सम्बन्धित शिवलिंग फटने की घटना, श्री गौतमस्वामी का यात्रा हेतु अष्टापद गिरि पर जाना, श्री वज्रस्वामी का

जिनपूजा निमित्त आकाशगामिनी विद्या द्वारा पुष्प लाना आदि बातों से ही उनको क्यों नाराजगी है ? जिनप्रतिमा पूजा, जिनमन्दिर और जैनतीर्थों ने आचार्य का क्या बिगाड़ा है, कि उनके साथ सम्बन्धित घटनाओं को वे चमत्कारिक कहकर नफरत करते हैं ?

एक प्रश्न यह भी है कि आचार्य हस्तीमलजी चिंतक किसको कहते हैं ? आधुनिक जो चिंतक नास्तिक हैं, अश्रद्धावान हैं और मिथ्यात्ववासित हैं, उनको तो कितनी भी सत्य होने पर धर्म संबंधी कोई भी बात सुहायेगी ही नहीं। ऐसे बहुत से आधुनिक चिंतक इतने नास्तिक हैं कि वे धर्म को "नशा" की संज्ञा देते हैं। ऐसे चिंतकों की तुष्टि के लिये असत्य का सहारा लेकर, पूर्वाचार्यों के कथनों को धृष्टता पूर्वक अन्यथा कहकर आचार्य हस्तीमलजी सभी जैन शास्त्रों को जी चाहे वैसे पलट डाले, फिर भी प्राचीन जैन शास्त्रों की बात पर उनके माने हुए आधुनिक चिंतकों को विश्वास होगा या नहीं यह प्रश्न ज्यों का त्यों खड़ा ही रहेगा। फिर तो "लेने गई पूत और खो आयी खसम" वाली कहावत आचार्य द्वारा चरितार्थ हो जायगी।

जैन धर्म में भी ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जो आगम और आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकादि कथित प्रामाणिक सत्य होने पर और ऐतिहासिक प्राचीन शिलालेखों एवं ध्वंसावशेषों की सामग्री मौजूद होते हुए भी जिनमंदिर तथा जिन प्रतिमा आदि के विषय में श्रद्धा नहीं करते हैं, फिर क्या उनके लिए प्राचीन आगम शास्त्रों को बदल दिया जाय ? अथवा प्राचीन जैन प्रतिमा और मंदिर आदि को इन्द्रजाल ही समझा जाय ?

जिसके दिल में प्राचीन जैनाचार्यों पर श्रद्धा, भक्ति और बहुमान है, वह कभी भी अविश्वास पूर्ण वचन नहीं बोलेगा कि "पूर्वाचार्यों ने ऐसी चमत्कारिक घटना का उल्लेख कर दिया है, जिस

को मानने के लिये अधिकांश आधुनिक चिंतक किसी भी दशा में विश्वास नहीं कर सकते।" किन्तु आचार्य हस्तीमलजी का उक्त प्रतिपादन नितांत गलत और स्वमति कल्पित है क्योंकि अखबारों में प्रसिद्ध होने वाली बहुत सी चमत्कारिक घटनाओं को आज के चिंतक सत्य तथ्य स्वीकार करते हैं।

हमारा तो यही मानना है कि 'आज के युग के अधिकांश चिंतकों" में आचार्य भी एक हैं, जिन्होंने पूर्वाचार्यों के प्रामाणिक कथनों पर अप्रामाणिक आक्षेप करके बगावत की है। आचार्य के पास ऐसा कौनसा यंत्र है जिससे वे जान सकें कि चमत्कारपूर्ण घटना पर आज के युग के चिंतक विश्वास नहीं करते हैं? आचार्य निज के विषय में तो ऐसा कह सकते हैं, किन्तु अधिकांश चिंतकों के विषय में ऐसी कल्पना उनके अधिकार के बाहर है। हमारा तो यह कहना है कि पूर्वाचार्यों के विषय में आचार्य ऐसी संकुचित मान्यता क्यों रखते हैं कि पूर्वाचार्यों ने आगमेतर जैन साहित्य गलत रचा है। आज के विज्ञान के युग में जैनागमों की बहुत सी बातें जो पहिले विदेशी शिक्षितों में अविश्वसनीय एवं काल्पनिक मानी जाती थीं, आज वे प्रामाणिक सिद्ध हुई हैं। जैसे कि पूर्वभव का होना, वनस्पति एकेन्द्रिय जीव है, पानी में असंख्य जीव का होना, आवाज का पौद्‌गलिक होना, एक भाषा में बोला गया शब्द अपनी अपनी भाषा में सुनना आदि अनेक जैनागम कथित बातें विज्ञान द्वारा सिद्ध हो चुकी हैं।

चमत्कारपूर्ण घटनाएँ आधुनिक चिंतकों को अविश्वसनीय लगती हैं इसके कारण उनको अपने इतिहास में लिखना आचार्य ने अनुचित समझा है। फिर तो जैन धर्म का त्याग-तप-संयमादि की बातें अधिकांश आधुनिक चिंतकों को अरुचिपूर्ण और अविश्वसनीय लगती हैं, तो क्या आचार्य जैन धर्म को अविश्वसनीय मानकर त्याग देंगे?

अस्तु । पूज्य सिद्धसेनसूरिजी आदि की घटना चमत्कार पूर्ण होने के कारण आधुनिक चिंतकों को अविश्वसनीय लगे अतः आचार्य ने उनको नहीं लिखना उचित समझा है, तो क्या निम्नलिखित आगम कथित बातें आधुनिक चिंतकों को अविश्वसनीय और अश्रद्धनीय नहीं लगेंगी ? फिर क्या आचार्य आगम शास्त्रों को भी आधुनिक चिंतकों की संतुष्टि के लिये पलटेंगे ? यथा—

(१) तीर्थंकरों का खून सफेद होना।

(२) तीर्थंकर परमात्मा के जन्मादि कल्याणकों के अवसर पर देवेन्द्रों का आगमन आदि ।

(३) इन्द्रभूति आदि ४४०० ब्राह्मणों की एक ही दिन में भगवान श्री महावीर स्वामी के पास दीक्षा लेना और इन्द्र द्वारा साधु वेष देना ।

(४) श्री ऋषभदेव भगवान का ४०० दिन का निर्जल उपवास ।

(५) वैश्या के घर रहे हुए नंदीषेण द्वारा हर दिन १० को प्रतिबोधित करके दीक्षा दिलवाना ।

(६) चेटक और कूणिक के बीच रथमूसल युद्ध में एक ही दिन में ९६ लाख सैनिकों का संहार होना ।

(७) सद्योजात बालक महावीर के चरण-स्पर्श मात्र से मेरु पर्वत का कंपायमान होना ।

(८) मध्यलोक में असंख्य द्वीप और समुद्र का होना ।

(९) महाविदेह क्षेत्र में श्री सीमंधर स्वामी आदि बीस तीर्थंकरों का होना ।

(१०) सूर्य, चन्द्र, मंगल आदि ज्योतिष देवों के विमानों का अस्तित्व, जहाँ रोकेट आदि द्वारा मनुष्य अब भी नहीं पहुँच पाया है ।

(११) जह्नु आदि ६० हजार सगरपुत्रों की तीर्थरक्षा में एक साथ मृत्यु ।

(१२) एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के सम्मूर्च्छिम (माता-पिता के संयोग के बिना जन्मे हुए) जीव ।

(१३) इस अवसर्पिणी काल के दश आश्चर्य ।

(१४) धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय का अस्तित्व ।

(१५) स्वर्ग और नरक आदि का होना ।

(१६) ओस के जीवों की रक्षा हेतु कालवेला में सुविहित मुनियों द्वारा कम्बल का उपयोग करना ।

(१७) रजस्वला स्त्री की अपवित्रता और उसके लिये स्वाध्याय निषेध ।

(१८) संगम का कालचक्र आदि देवकृत भयंकर उपसर्ग होने पर भी भगवान महावीर की मृत्यु का न होना ।

(१९) विद्युत्-बिजली आदि अग्निकाय एकेन्द्रिय जीव है ।

(२०) वायु एकेन्द्रिय जीव है ।

(२१) आलू, मूली, गाजर आदि जमीकन्दों में अनन्त जीव का होना और दयाधर्मी को वे नहीं खाना चाहिए ऐसी श्रद्धा और विश्वास संपादन करना ।

(२२) बासी और द्विदल भक्षण में त्रसकाय जीवों की महा हिंसा का होना।

(२३) थूंक आदि में सम्मूर्च्छिम जीवों की उत्पत्ति होना।

(२४) रात्रि भोजन नरक का द्वार है।

(२५) जीव, संसार और कर्म अनादि हैं।

(२६) नमक, पत्थर, सोना, चांदी आदि पृथ्वीकाय एकेन्द्रिय जीव हैं।

ऐसी तो सैंकड़ों बातें हैं, जिनकी प्रामाणिकता और सत्यता को सिद्ध करने के लिये हमारे पास आगमों और आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य को छोड़कर आधार ही क्या है? आप्तपुरुष तीर्थंकरों एवं पूर्वाचार्यों के वचनों पर श्रद्धा और विश्वास के अभाव में आप्तपुरुष कथित इन बातों पर अश्रद्धा और अविश्वास बना रहे तो इसमें क्या आश्चर्य है?

गुरुगम और समुचित अभ्यास के अभाव में ज्योतिष आदि शास्त्र अज्ञानी को व्यर्थ या झूठ लगे, ऐसे ही गुरुगम और समुचित स्याद्वाद परिणतमति के अभाव में आचार्य हस्तीमलजी को पंचमहाव्रती पूर्वाचार्यों कथित बातें चमत्कारिक एवं कल्पित लगे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

आज के युग के कथित कतिपय नास्तिक चिंतकों की संतुष्टि हेतु आचार्य ने जैन साहित्य को बदलने और छिपाने की जो सुधारवादी प्रवृत्ति की है, इससे जैन समाज को सावधान एवं सतर्क रहने की अत्यंत आवश्यकता है।

स्वयं सुधारवादी वृत्तिवाले आचार्य दूसरों को आत्मवंचक हितशिक्षा खंड–२, पृष्ठ २६ पर देते हैं कि—

यदि प्रत्येक जिनशासनानुयायी में इस प्रकार की जागरूकता उत्पन्न हो जाए तो आज जैनागमों के सम्बन्ध में तथाकथित सुधारवादियों द्वारा जो विषैला प्रचार किया जा रहा है, उसके कुप्रभाव और कुप्रवाह को रोका जा सकता है।

मीमांसा—हमारा भी यही कहना है कि आचार्य हस्तीमलजी के प्राचीन जैन साहित्य विषयक सुधारवादी विषैले दृष्टिकोण से जैन समाज को जागरूक रहना चाहिए।

जैन शास्त्र में सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट को
भ्रष्ट कहा है।

[प्रकरण-२३]

लब्धिनिधान श्री गौतमस्वामी

प्रातःस्मरणीय, विनयवन्त, लब्धिनिधान प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी महाराज १४ विद्या के पारंगत थे। भगवान श्री महावीर देव के तीन ही पद [उपनेईवा, विगमेईवा, धूवेईवा] पाकर जिनके हृदय में द्वादशांगी का प्रकाश हुआ था। वे इतने विनयवन्त थे कि दीक्षा दिन से ही अहं का त्याग कर भगवान के सामने अंजलिबद्ध बैठकर भगवान की वाणी को निधान से भी अधिक मूल्यवाली समझते हुए सुनते थे। उनकी सरलता इतनी थी कि भूल मालूम होने पर चौदह-पूर्वधारी उन्होंने आनन्द श्रावक से क्षमायाचना की थी। ऐसे पवित्र चारित्रधर श्री गौतमस्वामी श्री महावीर स्वामी के वचन पर अपनी चरम भविता के निर्णय तथा यात्रा हेतु स्वलब्धि बल से सूर्य की किरणों का सहारा लेकर श्री अष्टापदजी तीर्थ पर गये थे, जहां श्री ऋषभदेव भगवान की निर्वाण भूमि पर प्रथम चक्रवर्ती भरत राजा ने मंदिर बनवाया था। तीर्थयात्रा काल में ही उन्होंने श्री वज्रस्वामी जो पूर्वभव में तिर्यग् जृंभग देव था, उनको प्रतिबोध किया था और अष्टापद तीर्थ की यात्रा हेतु लब्धि प्राप्ति के लिये तप करते हुए १५०० तापस-सन्यासियों को चारित्र-दीक्षा देकर, अक्षीण महानस लब्धि के बल से अंगूठे में से अमृत तुल्य खीर बहाकर पारणा करवाया था, अतः आज भी लोग श्री गौतमस्वामी के विषय में कहते हैं कि अंगूठे अमृत बसे। वे

१५०० तापस गुरु श्री गौतम स्वामी की कृपा से केवलज्ञानी बने थे। श्री गौतम स्वामी ने जिनको भी दीक्षा दी है, उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया है, अतः आज भी "गौतम सरिखा गुरु नहीं" ऐसा जैन जन जन के दिल में गूंजता है।

खंड २, पृ० ३२ से ३९ तक में पूज्य श्री गौतमस्वामी के विषय में आचार्य हस्तीमलजी ने बहुत कुछ लिखा है, किन्तु श्री गौतमस्वामी का स्वलब्धि बल से श्री अष्टापद गिरि पर तीर्थयात्रा हेतु जाना, अष्टापदगिरि के सोपान पर लब्धिप्राप्ति हेतु तप करते हुए १५०० तापसों को खीर का पारणा करवाना आदि तथ्यों को छिपा के उन्होंने प्रथम गणधर श्री गौतमस्वामी के चरित्र के साथ सरासर अन्याय किया है। पृ० ३६ पर आचार्य लिखते हैं कि—

✲✲✲ वे सर्वाक्षर सन्निपात जैसी विविध लब्धियों के धारक थे। ✲✲✲

पृ० ३९ पर लिखते हैं कि—

✲✲✲ प्रतिदिन लाखों जन आज भी प्रभात की मंगल वेला में भक्ति पूर्वक भाव विभोर हो बोलते हैं,

अंगूठे अमृत बसे, लब्धि तणां भंडार।
श्री गुरु गौतम समरिये, वांछित फल दातार॥ ✲✲✲

मीमांसा—श्री गौतमस्वामी ने अंगूठे में से अमृत कहाँ और क्यों बहाया? लब्धि का उपयोग कहाँ और क्यों किया? वे वांछित फल के दातार किस कारण कहे जाते हैं? इन तथ्यों को आचार्य ने *अपने इतिहास में क्यों छिपाया है? क्या एक इतिहासकार को ऐसी* वंचना शोभनीय है?

तथ्य यह है कि अक्षीण महानस लब्धि से श्री अष्टापदगिरि के सोपान पर तप करते १५०० तापसों को खीर के पात्र में अंगूठा रखकर चाहे जितनी खीर बहाकर श्री गौतम स्वामी ने पारणा करवाया था, इसलिये उनके विषय में कहा जाता है कि—

"अंगूठे अमृत बसे।"

तथा स्वविद्या-लब्धि बल से सूर्य की किरणों को पकड़कर वे अष्टापदजी तीर्थ पर यात्रा करने गये थे, अतः उन्हें "लब्धि तणां भण्डार" कहते हैं और उन्होंने जिनको भी दीक्षा दी थी, उनको केवलज्ञान रूप अक्षयलक्ष्मी की प्राप्ति हुई है. अतः उनको वांछित फल दातार कहते हैं। इन्हीं कारणों से आज भी श्री गौतम स्वामी का नाम जैन जन-जन के हृदयों में अंकित है।

आचार्य हस्तीमलजी ने श्री गौतमस्वामी को विविध लब्धियों का धारक बताया है, किन्तु श्री गौतम स्वामी ने लब्धियों का उपयोग कब और कहाँ किया था ? प्रतिदिन लाखों जन उनको लब्धि का निधान कहकर क्यों याद करते हैं ? वे अंगूठे से अमृत बहाने वाले क्यों कहे जाते हैं ? आदि अनेक प्रश्नों को मंदिर और मूर्ति विरोधी स्वमान्यता के कारण आचार्य ने जो छिपाने की कुचेष्टा की है. वह विचारणीय है। आचार्य पद धारक होते हुए एक व्यक्ति जिनप्रतिमा, जिनमंदिर एवं तीर्थों आदि के विषय में तथ्यों को छिपाये या पक्षपात-पूर्ण वर्तन करे, यह क्या न्यायपूर्ण है ? ऐसी दशा में "संपादकीय नोंध" पृ० ३० (पुरानी आवृत्ति) पर मुख्य संपादक श्री गजसिंहजी राठौड़ (न्यायतीर्थ) का लिखना सरासर झूँठ और असंगत एवं आत्मवंचक है कि—

☼☼☼ **इतिहास-लेखन जैसे कार्य के लिये गहन अध्ययन, क्षीर नीर विवेकमयी तीव्र बुद्धि, उत्कट कोटि की स्मरण शक्ति, उत्कट साहस,**

अथाह ज्ञान, अडिग अध्यवसाय, "पूर्ण निष्पक्षता" (?) घोर परिश्रम आदि अत्युच्चकोटि के गुणों की आवश्यकता रहती है। वे सभी गुण आचार्यश्री (हस्तीमलजी) में विद्यमान हैं। ☼ ☼ ☼

मीमांसा—श्री गजसिंहजी को प्रशंसा एवं खुशामद नितांत असत्य ठहरती है, क्योंकि आचार्य में निष्पक्षता आदि का सर्वथा अभाव ही पाया जाता है, जो बात हम पूर्व में दिखा चुके हैं।

इतिहास विषयक तथ्य सत्य को छिपाने के बावजूद भी आचार्य पदारूढ़ और सत्यव्रत के धारक कहे जाने वाले आचार्य का छलकपट देखो कि वे खंड २, पृ० ३६ पर 'प्राक् कथन' में लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ हमारी चेष्टा पक्षपात विहीन एवं केवल यह रही है कि वस्तु स्थिति प्रकाश में लायी जाय। ☼ ☼ ☼

मीमांसा—"वस्तुस्थिति प्रकाश में लायी जाय"—ऐसा प्रतिज्ञापूर्वक कहने वाले आचार्य को उनकी कथनी और करनी बीच कितना बड़ा अन्तर है यह विचारना चाहिए।

इतिहासकार को तटस्थ और प्रामाणिक होना चाहिए जिसका स्थानकपंथी आचार्य हस्तीमलजी में नितांत अभाव ही पाया गया है, जो अत्यन्त खेद की बात है। सच्चा इतिहासकार तथ्य को कभी भी नहीं छिपाता है, चाहे वह स्वयं उसे माने या न मानें यह एक

अलग बात है किन्तु इतिहासकार के जरिये जो कुछ ऐतिहासिक सामग्री जिसके भी विषय में उपलब्ध हो उन सबको प्रस्तुत कर देना उसका पवित्र कर्तव्य है ।

—: लोकोत्तर चार महापाप :—

(१) साधु महाराज का खून करना (२) साध्वीजी के शील का खंडन करना (३) देवद्रव्य का भक्षण करना [बोली बोलकर पैसा न देना] (४) जिनमंदिर और मंदिर की प्रतिमा को तोड़ना [भद्रिक जीवों की मंदिर विषयक भावना को तोड़ना या मंदिर में नहीं जाना ऐसी प्रतिज्ञा देना]

[प्रकरण–२४]

स्याद्वाद सिद्धांत में हिंसा एवं अहिंसा

वैसे देखा जाए तो सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रवचन देना, गोचरी हेतु जाना आदि सभी शुभ धर्म क्रियाओं में स्थावर-काय की सूक्ष्म हिंसा होती ही नहीं है ऐसा दृढ़ता पूर्वक कहना मुश्किल है।

श्रावक सम्मेलन करवाना, प्रदर्शन हेतु भक्तजनों को सैकड़ों मील की दूरी से वंदन के बहाने बुलाना, उनके भोजनादि की सुविधा के लिये अन्य भक्तों को प्रेरित करना, कबूतरों को चुग्गा डालने की प्रेरणा करना, स्थानक बनवाने की प्रेरणा देना, किताब छपवाना, गोठ-प्रीतिभोज करवाना, इतिहासादि मुद्रित करवाने हेतु वैतनिक पंडित को सावद्य आदेश पूर्वक इधर-उधर भेजना, निज की तस्वीर छपवाने-बँटवाने में भक्तगणों को मूक सम्मति देना, नारियल आदि की प्रभावना करवाना, दया पलवाने पर कच्चा पानी पीना-पिलाना, थोड़ीसी राख डलवा के पानी को अचित्त (!) बनवाना आदि अनेक सावद्य यानी पापपूर्ण कार्यों को अहिंसा धर्म के प्रेमी माने जाने वाले और "प्रश्न व्याकरण" नामक आगम शास्त्र के नाम से दूसरों को अहिंसा विषयक कोरा उपदेश देने वाले आचार्य हस्तीमलजी उक्त सावद्य कार्य क्यों करते एवं करवाते हैं? यह आश्चर्यपूर्ण है। "आरंभे नत्थि दया" अर्थात् "हिंसा रूप आरम्भ में दया नहीं है", ऐसा एकान्त से कहने वाले

आचार्य को अपनी करनी और कथनी जांचनी चाहिए और अगर उनकी उक्त करनी हिंसामूलक है तो उन्हें इनका त्याग करना चाहिए।

हिंसा और अहिंसा के विषय में जैन सिद्धान्त स्याद्वाद के समुचित ज्ञान के अभाव के कारण ही आचार्य ने खंड २, पृ० १५६ पर लिखा है कि—

☼ ☼ ☼ जो लोग चैत्य, मंदिर, मठ और यज्ञ-यागादि धर्मकार्यों में होने वाली हिंसा को नहीं मानते उन्हें प्रश्न व्याकरण के इस अध्ययन को देखना चाहिए।

इसमें अर्थ और काम निमित्त की जाने वाली हिंसा की तरह धर्म-हेतु की जाने वाली हिंसा को भी अधर्म बताया है। ☼ ☼ ☼

मीमांसा—'प्रश्न व्याकरण' आगम के नाम से मंदिर और मठ के साथ यज्ञ-यागादि की हिंसा को जोड़ना आचार्य का अप्रमाणिक कृत्य है। आचार्य ने अगर जैनागमों और आगमेतर जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य, टीकादि को अच्छी तरह देखा होता तो मंदिर के साथ यज्ञ-यागादि की हिंसा को जोड़ने का दुस्साहस नहीं करते। संपूर्ण जैन साहित्य में कहीं भी यज्ञ-यागादि क्रिया को सराहा नहीं है। इतना ही नहीं शास्त्रों में उनको सर्वथा अनुचित मानते हुए उनकी कड़ी आलोचना एवं भर्त्सना की गयी है।

"चैत्य" शब्द के अर्थ को आचार्य हस्तीमलजी ने अस्पष्ट रखा है। यानी 'चैत्य' शब्द से उनका मतलब क्या साधु से, या ज्ञान से, या कामदेव की प्रतिमा से, या अन्य किसी अर्थ से है?

"मठ" शब्द से आचार्य का तात्पर्य अगर स्थानक या उपाश्रय से है, तब तो घटकुट्यां न्याय' चरितार्थ हो गया। वे स्वयं

मठ-स्थानक-उपाश्रयादि बनवाने की प्रेरणा करते हैं और स्थानक बनवाने वालों की प्रशंसा-सराहना-अनुमोदना भी करते हैं। अतः "प्रश्न व्याकरण" कथित अहिंसा विषयक बोध पाकर स्वयं आचार्य को ऐसा प्रतिपादन करना चाहिए कि मठ-स्थानक-उपाश्रय बंधवाना अधर्म है यानी पाप है, ताकि उनके भक्त स्थानक बनवाने की हिंसामय पाप प्रवृत्ति से बच सकें।

जिनमन्दिर तथा जिनपूजा में हिंसा होने से पूजादि को पाप रूप कहने वाले आचार्य को सार्धमिक भक्ति, प्रीतिभोज, श्रावक सम्मेलन, *जीवानुकम्पा, पुस्तक छपवाना, भक्तों को मीलों की दूरी से* बुलवाना, स्थानक बनवाना आदि कार्य भी पाप रूप होने के कारण, इन्हें त्यागना चाहिए। "प्रश्न व्याकरण" के उपदेश से स्वयं आचार्य ही क्यों विपरित चल रहे हैं ?

आगे पीछे के संदर्भ एवं तात्पर्य को छोड़कर ऐकान्तिक रीत से "प्रश्न व्याकरण आगम" के नाम से मंदिर एवं जिन प्रतिमादि सत्कार्यों को कोसने की आचार्य की प्रवृत्ति उनमें स्याद्वाद परिणत मति का अभाव ही प्रगट करती है। एकान्ते शरण्य, विश्ववंद्य तीर्थंकर परमात्माओं की उपस्थिति में भी पुष्पवृष्टि, चँवर ढुलाना, सुगंधित जल का छिड़कना, देवदुंदुभि बजना आदि होता था, अहिंसा धर्मियों को यह भूलना नहीं चाहिए कि इसमें वायुकायादि की हिंसा होती होगी फिर भी इन प्रवृत्तियों का काम-भोग की तरह भगवान ने निषेध नहीं किया है, एवं श्रेणिक आदि राजा महाराजाओं का चतुरंगी सेना और सर्व ऋद्धि-ठाठ से प्रभुवंदना के लिये जाने में भी हिंसा तो होती ही है, फिर भी ऋद्धि-ठाठ पूर्वक वन्दन हेतु आने को भगवान ने निषेध नहीं किया है।

स्याद्वाद पूत दृष्टिवाले को जानना चाहिए कि यहां भगवान को द्रव्यस्तव जनित शुभभाव ही अनुमोदनीय है, न कि तद्‌विषयक हिंसा। जैसे साधर्मिक भक्ति के पीछे एवं दया पलवाने के पीछे साधु को सार्धमिक भक्ति या जोवदया अभिप्रेत-अनुमोदनीय है, न कि चौका विषयक हिंसा तथा जैसे उपाश्रय बंधवाने की प्रेरणा के पीछे साधु को धर्म की आराधना अभिप्रेत है, न कि तद्‌विषयक हिंसा, वैसे ही गृहस्थों द्वारा होती पुष्प आदि से भगवान की पूजा में साधु को द्रव्यपूजा द्वारा शुभ भाववृद्धि अनुमोदनीय है, न कि पुष्पादि विषयक हिंसा, यह भूलना नहीं चाहिए। इसी प्रकार द्रव्यस्तव की अनुमोदना के पीछे भी गर्भित रीति से आप्त भगवान को द्रव्यपूजा से जनित शुभभाव की अनुमोदना ही अभिप्रेत है, न कि आरम्भ की अनुमोदना।

ऐसे ही भगवान को द्रव्यस्तव अनुमोदनीय और अभिप्रेत है, क्योंकि समवसरण में राजा एवं अमात्यों द्वारा होता बलिउपहार एवं भरत चक्रवर्ती आदि द्वारा निर्मित जिनमंदिर और मूर्तिपूजा के विषय में भगवान ने कभी भी निषेध नहीं किया है और न अनुचित भी कहा है। इस विषय को लघुहरिभद्र न्यायविशारद पूज्य यशोविजयजी उपाध्याय महाराज अपने "उपदेश रहस्य" नामक ग्रंथ में अनुमान प्रमाण से भी इस प्रकार सिद्ध करते हैं। यथा—

द्रव्यस्तवो भगवदनुमतिविषयः योग्यप्रज्ञाप्ये भगवद-निवारितत्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा कामादयः, यदि च भगवानेनं नान्वमोदयिष्य-त्तदा निराकरिष्यत्, अन्यथा योग्ये निषेध्यम् अनिषेध्योपदेशान्तरदाने तदनुमति-प्रसंगात्।

अर्थात्—द्रव्यपूजा भी भगवान को अभिप्रेत [मान्य-इष्ट-अनुमति का विषय] है। अगर भगवान को द्रव्यपूजा (द्रव्यस्तव) अनिष्ट-असहमत होता तो वे काम-भोग की तरह इसका भी इन्द्रादि

देवों और श्रेणिकादि भक्तों को निषेध अवश्य करते। यद्यपि भगवान जमालि जैसे अयोग्य और अप्रज्ञापनीय [जड़बुद्धिवाला] को निषेध्य का निषध नहीं करते, किन्तु इन्द्रादि देवों और अभयकुमार, श्रेणिकादि जैसे योग्य और प्रज्ञापनीय [सुखबोध्य] के सामने निषेध्य का निषेध नहीं करके अन्य विषय में उपदेश देने लगते, तो भगवान की निषेध्य में भी अनुमति है ऐसा सिद्ध हो जाता।

भगवान आप्त हैं यानी वे योग्य और सुख बोध्य को अहित से निवर्तन और हित में प्रवर्तन करवाते हैं। भगवान ने देवों द्वारा होती पुष्पवृष्टि, चँवर ढुलाना और बलि उपहार आदि का निषेध नहीं किया है, इससे द्रव्यपूजा के विषय में भगवान की अनुमति स्पष्ट सिद्ध होती है। ऐसा ही श्रेणिक आदि का चतुरंगी सेना के साथ जाना एवं सूर्याभदेव तथा जीर्णकुमारिओं के नाटक के विषय में भी जानना चाहिये।

आगम शास्त्रों एवं आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य, टीकादि कथित और पूर्वाचार्यों विहित (निरूपित) तथा हजारों सालों के प्राचीन शिलालेख, जिनमूर्तियों पर लिखे लेखों से मूर्ति और मूर्ति की मान्यता सिद्ध होते हुए भी जिनमूर्तिपूजा में हिंसा हिंसा की पुकार करने वालों की दयाधर्मिता आलू, मूली, गाजर आदि अनन्त-काय भक्षण करते वक्त एवं बासी तथा द्विदल खाते समय कहाँ चली जाती है, यह समझ में नहीं आता।

विहार के समय नदी उतरना, बर्तन खोलकर अतिउष्ण पेय चाय आदि ग्रहण करना, वर्षा बरसते समय भी प्रवचन रखना, नारियल की प्रभावना करना, इत्यादि हिंसा को दयाधर्मी आचार्य क्यों मान्यता देते हैं? इन सब स्थानों पर प्रश्न व्याकरण के उपदेश— "धर्महेतु की जाने वाली हिंसा भी अधर्म है" को आचार्य क्यों भूल जाते

हैं ? मेरठ में स्थानकपंथी साधु के स्मारक स्वरूप एक कीर्ति स्तम्भ बना है, उसके चारों तरफ बाग, बगीचे, नीचे हरि दूब तथा बिजली आदि जगमगाते हैं ? मंदिर की आलोचना करने वाले और मंदिर में नहीं जाने की प्रतिज्ञा कराने वाले आचार्य ने उक्त कार्यों का क्या कभी विरोध किया है ? या उस स्थान पर दर्शनार्थ नहीं जाने की प्रतिज्ञा अपने भक्तों को दी है ?

स्याद्वाददृष्टि से हम तो इतना ही कहेंगे कि भगवान की आज्ञा में ही धर्म है। पूज्य कालिकाचार्य ने लड़ाई तक लड़वाई है, इस पर भी वे महान अहिंसक कहे जाते हैं। मूढ़ लोग भले दया पलवाई उसको अहिंसा माने, किन्तु पानी में थोड़ी सी राख डालकर कच्चा पानी पिलाने के कारण बाहरी कल्पित अहिंसा भी भीतर से महाहिंसा है, इतना ही नहीं किन्तु ऐसी कुप्रवृत्ति मिथ्यात्व को बढ़ावा भी देती है।

आगमेतर जैन शास्त्रों में सबसे प्राचीन, श्री महावीर स्वामी के द्वारा दीक्षित पूज्य धर्मदास गणि महाराज द्वारा विरचित "उपदेश-माला" शास्त्र में कहा है कि—

तम्हा सव्वणुन्ना, सव्वनिसेहो य पवयणे नत्थि।
आयं वयं तुलिज्जा, लाहाकंखिव्व वाणिओ ॥श्लोक ३९२॥

भावार्थ—जिनाज्ञा उत्सर्ग और अपवाद रूप में है। जैनागमों में त्याज्य रूप से जिसका निषेध किया गया है, उसका भी अपवाद मार्ग से विधान बताया गया है। यानी जैन प्रवचन में सर्वनिषेध कहीं भी नहीं है। अतः लाभाकांक्षी बनिये की तरह लाभालाभ विचार करके ही प्रवृत्ति करनी चाहिए।

जिनमंदिर, जिनप्रतिमादि के विषय में आचार्य को अनेकान्तवाद का आश्रय लेना चाहिए, क्योंकि शास्त्रों में स्याद्वाद-परिकर्मित शुद्ध श्रद्धा और परिणति के बिना व्यक्ति को द्रव्यचारित्री ही कहा है।

स्थावर हिंसा जिनपूजा में, यह देख तूं धूजे।
तो पापी वह दूर देश से, जो तुझे आकर पूजे॥

—न्यायविशारद पूज्य यशोविजयजी
उपाध्याय महाराज

[प्रकरण–२६]

श्री भद्रबाहुस्वामी और उवसग्गहरं स्तोत्र

भगवान श्री महावीर स्वामी की पाट परम्परा में आर्य श्री प्रभव स्वामी के पश्चात् पूज्य यशोभद्रसूरिजी आये। आपके शिष्य आर्य श्री भद्रबाहु स्वामी १४ पूर्वधर थे। आपका जीवन वृत्तान्त इस प्रकार है।

आर्य श्री यशोभद्रसूरिजी के पास ब्राह्मण ज्ञातीय भद्रबाहु और वराहमिहिर नाम के दो भाईयों ने दीक्षा ली। श्री भद्रबाहुस्वामी विनयवन्त और तेजस्वी थे, गुरुकृपा से आप चौदहपूर्व के धारक बनें और आपको योग्य जानकर गुरु ने आचार्य पदारूढ़ किया। आचार्य-पदेच्छु वराहमिहिर को अयोग्य जानकर गुरु ने आचार्य पद नहीं दिया। अत: वह फिर से ब्राह्मण वेश धारणकर नैमित्तिक बन गया।

एक बार राजा के घर पुत्र का जन्म हुआ, तब वराहमिहिर ने बालक की आयु १०० साल बताई, किन्तु आर्य श्री भद्रबाहुस्वामी ने बताया कि उसकी सातवें दिन बिडाल से मौत होगी। बालक की सुरक्षा के निमित्त राजा ने सब बिडाल बिल्ली को नगर के बाहर निकाल दिया। फिर भी सातवें दिन बालक की मृत्यु कपाट की अर्गला पर उत्कीर्ण बिडाल की आकृति वाली अर्गला से हो गयी। राजा को ज्ञात हुआ कि पूज्य भद्रबाहुस्वामी का ज्ञान सत्य से परिपूर्ण है। लोगों में वराहमिहिर की बड़ी हाँसी हुई, वह अज्ञानकष्ट से मरकर देव हुआ

और लोगों पर उपसर्ग करने लगा। इससे बचने हेतु पूज्य भद्रबाहुस्वामी ने "उवसग्गहरं स्तोत्र" की रचना की, जिसके जाप-ध्यान से संघ उपद्रव रहित हुआ।

आचार्य हस्तीमलजी खंड २, पृ० ३३१ पर लिखते हैं कि—

❋❋❋ धात्री से बालक की मृत्यु का कारण पूछा गया तो उसने रोते हुए उस अर्गला को उठाकर महाराज के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। अर्गला के मुख पर उत्कीर्ण की हुई बिडाल की आकृति को देखकर राजा ने आश्चर्याभिभूत होकर बारम्बार आचार्य भद्रबाहु की महिमा की····। ❋❋❋

मीमांसा—यहाँ प्रश्न यह है कि बालक की मृत्यु बिडाल से हुई या लोहे की अर्गला से? यद्यपि बालक की मृत्यु लोहे की अर्गला से हुई है, फिर भी अगाध ज्ञानी १४ पूर्वधर महर्षि श्री भद्रबाहुस्वामी ने बालक की मृत्यु का कारण बिडाल क्यों बताया? इतने ज्ञानी को तो यह कहना चाहिए कि बालक की मृत्यु—"लोहे की अर्गला गिरने से होगी"। क्योंकि बिडाल की निर्जीव आकृति से किसी की मौत नहीं हो सकती। यहाँ १४ पूर्वधर को बिडाल की मूर्ति में भी मूर्तिमान अभिप्रेत है, किन्तु इसप्रकार की सूक्ष्म बात की समझ बिना गुरुगम के कारण स्थानकपंथी को कभी नहीं आयेगी, कि—"१४ पूर्वधर ने भी बालक की मौत का कारण बिडाल से कहा था, जोकि लोहे के कपाट पर उत्कीर्ण निर्जीव बिडाल की आकृति मात्र थी।"

स्पष्ट तथ्य यह है कि केवलज्ञानी तुल्य देशना देने वाले चौदह पूर्वधर श्रीमद् भद्रबाहु स्वामी ने बिडाल की आकृति को भी बिडाल कहा है। इसी दृष्टांत से आचार्य को भी जानना चाहिए कि जिनेश्वर देव की प्रतिमा भी जिनेश्वर देव के समान कही जाती है।

यद्यपि श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों जैन समाज की यह श्रद्धा है कि—

"जिन प्रतिमा जिन सारिखी"। यानी जिनेश्वर देव की प्रतिमा जिनेश्वर देव के समान ही है। बहुधा स्थानकपंथी लोग श्वेताम्बरों को पत्थर पूजक कहते हैं या भगवान की मूर्ति को पत्थर कहते हैं तो यह उनकी अल्पज्ञता ही है, क्योंकि मूर्ति की पूजा इसलिए नहीं की जाती है कि वह सोने, चांदी या संगमरमर की है, किन्तु वह तीर्थंकर परमात्मा की है इसलिए पूजा की जाती है। वास्तविकता यह है कि जिसका भावनिक्षेप वंदनीय-पूजनीय है, उसका नाम, स्थापना और द्रव्य ये तीनों निक्षेप भी वंदनीय-पूजनीय हैं। मूर्ति मूर्तिमान का स्मारक है। मूर्ति द्वारा मूर्तिमान की पूजा की जाती है। सिर्फ नाम स्मरण करने वाले भी अगर नाम स्मरण की गहराई में उतरें तो जड़ नाम के स्मरण के पीछे भी यही आशय समाया हुआ है। यद्यपि तीर्थंकर परमात्मा के सिर्फ नाम स्मरण के पक्षधर एवं हिमायती स्थानकपंथी मुनि आदि अपनी तस्वीर बड़े चाव से खिचवाते, बँटवाते देखे गये हैं, यहाँ भी मूर्ति के पीछे मूर्तिमान के स्मरण का भाव ही होगा या अन्य? इसका जवाब आचार्य स्वयं क्या देंगे?

जसे पिता वन्दनीय है, तो उनका चित्र-प्रतिमा भी वंदनीय-पूजनीय है। इसी तरह नमस्कार महामंत्र वंदनीय है, वैसे उनकी तस्वीर भी वंदनीय ही है। क्या स्थानकमार्गी नमस्कार महामंत्र की तस्वीर को थूंक अथवा पैर लगाकर आशातना करेंगे?

न्यायविशारद महाज्ञानी पूज्य यशोविजयजी उपाध्याय महाराज प्रभु के स्तवन में लिखते हैं कि—

ये जिन प्रतिमा जिनवर सरिखी, पूंजो त्रिविधे तुमे प्राणी।
जिन प्रतिमा में संदेह न रक्खो, वाचक यश की वाणी॥

यदि स्थानकपंथी आचार्यादि को कुपंथ त्याग कर सत्यमार्ग पर आना हो, तो उन्हें चौदह पूर्वधर महर्षि श्री भद्रबाहु स्वामी महाराज का एक ही कथन—"बिडाल की आकृति यानी बिडाल" के तथ्य को अच्छी तरह समझना चाहिए।

जिनप्रवचन और जिनमंदिर के अवर्णवाद और अपलाप करने वाले जिनशासन के अहितकारी तत्वों का जितनी हो सके उतनी ताकत से सामना करना चाहिए।

—"श्री उपदेशमाला शास्त्र"

[प्रकरण–२६]

जैन धर्म में सम्यक् श्रद्धा की व्यापकता

वीर निर्वाण के करीब ६८० साल बाद आगमों की वाचना करवाके पूर्वाचार्यों ने जैनागमों एवं आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य को पुस्तकारूढ़ कर महान उपकार किया है। उत्सूत्र को वज्रपाप समझने वाले, भवभीरु उन पूर्वाचार्यों की प्रामाणिकता ऐसी रही कि जहाँ भी सूत्र–अर्थ विषयक मतभेद आये वहाँ ग्रन्थ में उन्होंने दोनों मतभेद लिख दिये और ऐसे तत्त्वों को विवादास्पद न बनाते हुए लिख दिया कि—"यदत्र तत्त्वं तत्तु केवलिनो विन्दन्ति" यानी यहाँ परमार्थ क्या है यह तत्त्वज्ञानी-केवली ही जानें। महाज्ञानी पूर्वाचार्यों की स्वच्छमति देखो कि उन्होंने तत्त्व विपरीत हो जाने के डर से आगम सूत्रों पर अपनी स्वतन्त्र राय प्रगट नहीं की है। उनकी प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के कारण ही हमारे लिये आगम और आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य सत्य, मान्य और श्रद्धनीय हैं। क्योंकि "पुरुष विश्वास से वचन विश्वास" यह आगम वचन है।

आचार्य हस्तीमलजी को प्रामाणिक पूर्वाचार्यों के कथन पर श्रद्धा और विश्वास प्रतीत नहीं होता है। अतः वे सगरचक्रवर्ती के ६० हजार पुत्रों की मौत पर प्राचीन ग्रंथों का सहारा छोड़कर पौराणिक गपोड़ों पर विश्वास कर रहे हैं एवं श्री सिद्धसेनसूरिजी के विषय में

आधुनिक चिंतकों के बहाने पूर्वाचार्यों के कथन को झूठा करने को तुले हुए हैं। किन्तु यही इस कल्पित परम्परा की शुरू से आदत रही है। जैनागमों में सम्यक् श्रद्धा को चारित्र, तप, शील आदि सब धर्मों से प्रथम बताया है। पंचसूत्रकर्ता प्राचीनाचार्य ने सम्यक् श्रद्धा के बिना जमालि आदि की चारित्र की सुन्दर क्रिया को भी "कुलटा नारी की क्रिया" कही है, जिसका फल संसार भ्रमण है। आचार्य हस्तीमलजी जैनागम कथित सम्यक् श्रद्धा को अच्छी तरह जानते, तो जैन साहित्य को पलटने की सुधारवादी प्रवृत्ति नहीं अपनाते। आधुनिक उच्छृंखल चिंतकों को मान्य और विश्वसनीय बनें ऐसा जैन साहित्य होना चाहिए, इस प्रकार का भाव आचार्य ने खंड २, पृ० ३८/३९ पर प्राक्कथन में प्रगट किया है। यथा—

✡✡✡ इसी प्रकार बहुत सी चमत्कारिक रूप से चित्रित घटनाओं को भी इस ग्रन्थ में समाविष्ट नहीं किया गया है। मध्ययुगीन अनेक विद्वान ग्रन्थकारों ने सिद्धसेन प्रभृति कतिपय प्रभावक आचार्यों के जीवन चरित्र का आलेखन करते हुए उनके जीवन की कुछ ऐसी चमत्कारपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है, जिन पर आज के युग के अधिकांश चिन्तक किसी भी दशा में विश्वास करने को उद्यत नहीं होते। ✡✡✡

मीमांसा—पंचमहाव्रत धारक प्राचीनाचार्यों को झूठा करके आगम एवं आगमेतर प्राचीन साहित्य में मनमाना और जीचाहा परिवर्तन करने पर भी उच्छृंखल आधुनिक विचारकों को प्राचीन जैन साहित्य विषयक बात मान्य बनेगी या नहीं यह तो विचारणीय ही है। किन्तु प्राचीन जैन साहित्य के विषय में अपने उन्मार्ग प्रेरक सुधारवादी विचार आचार्य ने आज के युग के अधिकांश चिन्तकों के बहाने प्रस्तुत कर दिया है, जो जैनधर्म विषयक प्राचीन साहित्य पर अश्रद्धा एवं अविश्वास का सूचक है। स्याद्वाद परिकर्मित मति के अभाव के कारण

ही जमालि आदि शासन बाह्य हो गये थे, आचार्य इस बात को सूक्ष्मता से जानते ही होंगे। क्योंकि खंड १, पृ० ७१८ पर वे लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ **बहुत कुछ समझाने पर भी जमालि की भगवान के वचनों पर श्रद्धा प्रतीत नहीं हुई और वह भगवान के पास से चला गया। मिथ्यात्व के अभिनिवेश (दुराग्रह, झूठी जिद्द) से उसने स्वपर को उन्मार्गगामी बनाया और बिना आलोचना के मरण प्राप्त कर किल्बिषी देव हुआ।** ❂ ❂ ❂

मीमांसा—उत्सूत्र भाषण के वज्रपाप के कारण ही जमालि शासन बाह्य हो गया और उसने देव दुर्गति पायी। ऐसा निन्हवों के प्रकरणों को जानने वाले स्थानकपंथी आचार्य हस्तीमलजी आगम और आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य कथित और पूर्वाचार्यों द्वारा विहित एवं प्ररूपित जिनप्रतिमा, जिनमंदिर, तीर्थों आदि का विरोध करके मिथ्यात्वी जमालि आदि निन्हवों की कोटि में क्यों प्रवेश करते हैं? क्योंकि जैनधर्म में स्थानकपंथी मत प्रवर्तक लोंकाशाह के पहिले जिन-मूर्तिपूजा और जिनमंदिर का विरोध किसी जैनाचार्यादि ने किया हो तो आचार्य को प्रामाणिकता से प्रस्तुत करना चाहिए।

राय बहादुर पंडित श्री गौरीशंकर ओझा अपने "राजपूताना का इतिहास" पृ० १४१८ पर लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ **स्थानकवासी श्वेताम्बर समुदाय से पृथक् हुए जो मन्दिरों और मूर्तियों को नहीं मानते हैं। उस शाखा के भी दो भेद हैं, जो बारहपन्थी और तेरहपंथी कहलाते है। ढूंढियों (स्थानकपंथी) का समुदाय बहुत प्राचीन नहीं है, लगभग ३०० वर्ष से यह प्रचलित हुआ है।** ❂ ❂ ❂

मीमांसा—मूर्ति और मंदिर का विरोध करने वाले श्रीमान् लोंकाशाह के गच्छवाले आचार्य जो "लोंकागच्छीयाचार्य" के नाम से

पुकारे जाते थे, उन्होंने ही मंदिर बनवाकर जिनमूर्तियों की प्रतिष्ठा करवायी थी। एक तथ्य और भी है जिससे विद्यमान प्राचीन साहित्य और करीब करीब सभी स्थानकपंथी विद्वान सहमत हैं कि लोंकाशाह ने स्वमति कल्पना से केवल जिनमंदिर और जिनप्रतिमा का ही विरोध किया था, किन्तु बाद में "लवजी" नामक स्थानकपंथी साधु ने सूरत (गुजरात) में वि० सं० १७०६ (ई० सं० १६५२) में मुँह पर मुँह-पत्ती बाँधकर इस मत का प्रवर्तन किया था, न कि लोंकाशाह ने। यानी आजके स्थानकपंथी लोंकाशाह के नहीं किन्तु लवजीऋषि की परम्परा (संतानीय) के हैं। स्थानकपंथी पंडित लिख रहे हैं कि—

❂ ❂ ❂ मुख बन्धन श्री लोंकाशाह के समय से शुरु नहीं हुआ है; किन्तु उसके बाद हुए स्वामी लवजी के समय से शुरु हुआ है और वह [मुख पर मुँहपत्ती बांधना] आवश्यक भी नहीं है। ❂ ❂ ❂

[जैन ज्योति, दिनांक १८-७-३६, पृ० १७२, लेखक—राजपाल मगनलाल बोहरा, गुजराती पर से हिन्दी]

श्वेताम्बर जैन श्रावक श्री रणजीतसिंहजी भण्डारी [जयपुर] "सत्यसंदेश" किताब पृ० (ख) पर लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ मुँहपत्ती रात दिन मुँह पर बांधने से बार बार थूँक की चिपचिपी, चतुरस्पर्शी जीवों का ताड़न प्रताड़न, बोलने में असुविधा तथा चेहरे के सही भाव व्यक्त करने की सुविधा से वंचित होना आदि। क्या यह वैज्ञानिक कसौटी पर खरी उतर सकेगी ? ❂ ❂ ❂

मीमांसा—एक मंदिर और मूर्ति के पीछे स्थानकवासियों को जैनागमों और प्राचीन जैन साहित्य को भी झूठा कहने की एवं पलटने की नौबत आती है और कुवेष रचकर वे हास्यास्पद भी बनते हैं।

जन्म से स्थानकमार्गी पंडित सुखलालजी अपने पर्यूषणा के व्याख्यान में लिखते हैं कि—

✲ ✲ ✲ हिन्दुस्तान में मूर्ति के विरोध की विचारणा मुहम्मद पैगम्बर के पीछे उनके अनुयायी अरबों और दूसरों द्वारा धीरे धीरे प्रविष्ट हुई।

जैन परम्परा में मूर्ति विरोध को पूरी पांच शताब्दी भी नहीं बीती है [मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास में से] ✲ ✲ ✲

मीमांसा—वास्तविकता तो यह है कि मूर्ति विरोध करने वालों के पास भी जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध करने के लिये मंदिर और मूर्ति को छोड़कर अन्य प्रमाण ही क्या है ? स्वयं आचार्य हस्तीमलजी ने ही नंदीसूत्र एवं कल्पसूत्र की पट्टावलियों को प्राचीन जिनप्रतिमा की चौकियों पर उट्टंकित लेख एवं प्राचीन शिलालेखों का सहारा लेकर ही प्राचीन एवं प्रामाणिक निर्णत किया है।

विद्वान लेखक मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज अपनी "मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास" नामक किताब के पृ० ७ पर लिखते हैं कि—

✲ ✲ ✲ स्थानकवासी मत प्रवर्तक लोंकाशाह [स्थानकपंथी परम्परा के आद्यप्रणेता एक वृद्ध जैन भाई] पर मुस्लिम संस्कृति का बुरा प्रभाव था और मूर्तिविरोधी उनकी मान्यता को मुसलमानों ने सहायता की थी। ✲ ✲ ✲

मीमांसा—जैनधर्म में मंदिर और मूर्तिविरोधी मान्यता का आद्यप्रणेता लोंकाशाह को माना जाता है, जो कि एकवृद्ध जैनभाई था और शास्त्रों को लिखकर अपनी आजीविका चलाने वाला लिखारी मात्र था। और उससे चले हुए लोंकागच्छीय आचार्यों ने ही मूर्तिपूजा

का समर्थन किया है। स्थानकपंथियों में घर के आंगन में ही लोंकाशाह के विषय में काफी मतभेद हैं एवं इसकी दीक्षा के विषय में भी इतने ही मतभेद हैं।

हमारा तो इतना ही कहना है कि स्थानक पंथी अगर पूर्वाचार्यों पर श्रद्धा रखते हैं तो उनके मार्ग को उन्हें अपनाना चाहिए। अन्यथा श्रद्धाभ्रष्ट के विषय में आचार्य स्वयं खंड २, पृ० ५७ पर लिखते हैं कि—

✲ ✲ ✲ दंसण भट्ठो भट्ठो, दंसण भट्ठस्स नत्थि निव्वाणं।
सिज्झंति चरण रहिया, दंसण रहिया न सिज्झंति ॥

अर्थात्—दर्शनभ्रष्ट (श्रद्धा से पतित) भ्रष्ट है, ऐसे श्रद्धाभ्रष्ट का निर्वाण (मोक्ष) नहीं होता, (द्रव्य) चारित्र बिना भी मोक्ष है, किन्तु श्रद्धा रहित का मोक्ष नहीं है। ✲ ✲ ✲

मीमांसा— श्री ठाणांग सूत्र, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि अनेक आगम सूत्रों में जगह जगह शाश्वत-अशाश्वत जिनप्रतिमा और जिन मन्दिर आदि की बात आती है। आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य, टीकादि में भी जिनमन्दिर, स्तूप आदि की बात लिखी है। प्राचीन ऐतिहासिक अवशेष भी मूर्तिपूजा की ठोस सिद्धि करते हैं एवं पूर्वाचार्यों ने ही सम्मेदशिखर, शत्रुंजय, गिरनारजी, पावापुरी, चंपापुरी आदि अनेक तीर्थों एवं तीर्थंकरों की कल्याणक भूमियों पर जिनमन्दिर निर्माण करवाये हैं और उनमें जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा भी करवायी है। ऐसी दशा में कम से कम श्रद्धावन्त कोई भी जैन जिन-प्रतिमा और मंदिर के तथ्य को स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता और इसमें ही अनेकान्त दृष्टि सन्निहित है।

अनेकान्त दृष्टि के कारण ही अनेक स्थानकपंथी मुनियों ने मुँहपत्ति का डोरा तोड़कर शुद्ध संवेगी साधु मार्ग अपनाया था। "सत्य-संदेश" संपादक-पारसमल कटारिया। लेखक—सौभाग्यचन्द लोढा—पृ० २३ पर लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ उन्होंने ढूंढकमत को त्यागकर शुद्ध संवेगी मत स्वीकार किया। ☼ ☼ ☼

मीमांसा—गणिवर श्री मुक्तिविजयजी (मूलचन्दजी), गणिवर श्री बुद्धिविजयजी (बूटेरायजी), महोपाध्याय श्री रणधीर विजयजी, महान जैनाचार्य पूज्य श्री विजयानन्दसूरिजी (आत्माराम जी), मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी आदि अनेक विद्वानों ने कल्पित जानकर स्थानक पंथ का त्याग किया था और शुद्ध संवेगी साधु मार्ग में दीक्षा ली थी और साहित्य लेखन द्वारा स्थानकमत विषयक भ्रमजाल का पर्दा खोलने का सराहनीय प्रयास किया था। बात तो यह है कि भोली जनता को अंधेरे में तब तक ही भटकाया जा सकता है जब तक उनमें संस्कृत-प्राकृत भाषा द्वारा ज्ञान का प्रकाश न हो।

आश्चर्य तो इस बात का है कि स्थानकपंथी अपने आद्य-प्रवर्तक लोंकाशाह के बताये रास्ते से भी विपरीत चलते हैं, वे अगर उनसे भी प्राचीन शास्त्रों को मान्य नहीं करें तो आश्चर्य ही क्या है ?

खंड १, पृ० ६६६ पर आचार्य लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ १४ पूर्व के रचियता गौतमस्वामी आनन्द को मिच्छामि-दुक्कडं देते हैं। ☼ ☼ ☼

मीमांसा—यह तो अनजान से भूल हुई उसकी माफी श्री गौतम स्वामी मांगते हैं, किन्तु जानबूझकर और मायावृत्ति के साथ की गयी भूलों के लिये गहरे प्रायश्चित्त की आवश्यकता है। अतः इतिहास के अन्त में मिच्छामि दुक्कडम्' ऐसा आचार्य लिख दें, तो उससे दुष्कृतगर्हा नहीं हो सकती।

जिसका मन समकित में निश्चल।
कोई नहीं तस तोले रे॥

—पू॰ यशोविजयजी महाराज

[प्रकरण–२७]

अनुचित खुशामद

आचार्य हस्तीमलजी ने "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" नामक पुस्तक लिखकर साम्प्रदायिक कटुता उभारने का अस्तुत्य प्रयत्न किया है। इन्हीं महाशय ने ही इसके पहिले "पट्टावली प्रबध संग्रह" नामक एक किताब जिसका डा० नरेन्द्र भाणावत (जयपुर) ने संपादन किया है, छपवाकर जिनमूर्ति पूजा विषयक "इस प्रकार सं० ८८२ में हिंसाधर्म प्रगट हुआ" तथा प्राचीन संयमी जैनाचार्यों पर "वे शिथिलाचारी थे" आदि लिखकर अनर्गल आक्षेप किये हैं।

"सत्य संदेश" किताब द्वारा जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ (जयपुर) ने उक्त विषय में जागरुकता दिखायी है, किन्तु खेद है कि ऐसी साम्प्रदायिक कटुता उभारने वाली पुस्तक का व्यापक विरोध होना चाहिए था, वह नहीं हुआ है। इसके कारण ही आज भी आचार्य हस्तीमलजी द्वारा दूषित साहित्य निर्माण कर विषैला प्रचार चालू हो रहा है।

एकता और शान्ति हमें पसन्द है, किन्तु स्थानकपंथ के कर्णधार आचार्य सत्य को तोड़-मरोड़ कर उसका कुप्रचार करें, वह असह्य है। स्थानकपंथी समाज के कर्णधार द्वारा ऐसी अनुचित और गलत प्रवृत्ति कव से प्रारम्भ हो चुकी है, जिसने बड़ा विवाद जगाया है, जिसका जैन समाज द्वारा व्यापक प्रतिहार होना अत्यन्त आवश्यक है।

उक्त 'पट्टावली प्रबन्ध संग्रह' नामक ग्रन्थ जो आचार्य हस्तीमलजी ने लिखा है इस विषय में तटस्थ साहित्यकार, पुरातत्त्वज्ञ विद्वान् श्री अगरचन्दजी नाहटा "सत्य संदेश" पुस्तक में पृ० (क) पर—"एक अत्यावश्यक स्पष्टीकरण" लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में भी इस ग्रन्थ में प्रकाशित कई बातें सर्वथा गलत और साम्प्रदायिक कटुता को उभारने वाली हैं।

[सत्य संदेश, संपादक—पारसमलजी कटारिया, जयपुर] ☼ ☼ ☼

मीमांसा—श्री अगरचन्दजी नाहटा का उक्त कथन सर्वथा सत्य है। मूर्तिविरोधी गलत मान्यता वाले आचार्य के साहित्य की तटस्थ एवं प्रामाणिक कोई भी विद्वान् प्रशंसा नहीं कर सकता। डा० नरेन्द्र भाणावतजी जैसे विद्वान् भी जब साम्प्रदायिक कटुता उभारने वाले षड्यंत्र में ऐसे महाशय को साथ-सहकार-प्रोत्साहन देते हैं तब हमें सखेद आश्चर्य होता है।

"जैन धर्म का मौलिक इतिहास" पुस्तक के एक मुख्य संपादक न्याय-व्याकरण तीर्थ श्री गजसिंहजी राठौड़ ने खंड १ (पुरानी आवृत्ति) में "संपादकीय नोंध" के पृ० ३३ से ४२ तक आचार्य हस्तीमलजी की लम्बी-चौड़ी आत्मवंचक खुशामद की है। पृ० ३० पर वे लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ इतिहास-लेखन जैसे कार्य के लिये गहन अध्ययन, क्षीर नीर विवेकमयी तीव्र बुद्धि, उत्कृष्ट कोटि की स्मरण शक्ति, उत्कट साहस, अथाह ज्ञान, अडिग अध्यवसाय, पूर्ण निष्पक्षता, घोर परिश्रम आदि अत्युच्चकोटि के गुणों की आवश्यकता रहती है। वे सभी गुण आचार्य श्री (हस्तीमलजी) में विद्यमान हैं। ☼ ☼ ☼

मीमांसा—ऐसा लगता है कि स्थानकपंथियों में अपनी प्रशंसा करवाने का विशेष प्रलोभन होता है । उनके माने हुए ३२ आगमों पर कुछ वृत्ति–चूर्णि–भाष्य–टीकादि के सहारे से, कुछ इधर–उधर से लेकर और वह भी भूलों एवं झूठों से भरा हुआ सिर्फ "हिन्दी अनुवाद" करने वाले अमोलक ऋषि नामक स्थानकपंथी साधु ने अपनी हिन्दी अनुवादित पुस्तकों के पन्ने–पन्ने पर अपना नाम लिखवाया और छपवाया है । ऐसा तो संस्कृत और प्राकृत भाषा में जैनागमों पर स्वतंत्र प्रचुर साहित्य रचने वाले पूज्य हरिभद्रसूरिजी, पूज्य अभयदेवसूरिजी, पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज एवं पूज्य यशोविजयजी उपाध्याय महाराज आदि महान् विद्वानों ने भी नहीं किया है । उक्त अमोलक ऋषि की परम्परा के आचार्य हस्तीमलजी भी एक महाशय हैं, जिन्होंने मन-कल्पित एवं जीचाहा जैनधर्म सम्बन्धित इतिहास आदि साहित्य नामधारी एक समिति द्वारा रचवाया है और उसमें अपनी जीभर प्रशंसा करवायी है ।

श्री गजसिंहजी द्वारा प्रशंसा करवाने वाले आचार्य हस्तीमलजी स्वयं प्राचीन जैनाचार्यों को झूठा करने हेतु खंड–१, पृ० १२३ पर लिखते हैं कि—

छद्मस्थ साहित्यकारों द्वारा चरित्र–चित्रण में अतिशयोक्ति होना असंभव नहीं ।

मीमांसा—आचार्य के उपरोक्त कथन से गजसिंहजी राठौड़ का भ्रम नष्ट हो गया होगा । यानी छद्मस्थ गजसिंहजी राठौड़ द्वारा किया गया "आचार्य हस्तीमलजी" का चरित्र–चित्रण अतिशयोक्तिपूर्ण होना सर्वथा संभव है । क्योंकि मुख्य संपादक गजसिंहजी छद्मस्थ होने के साथ साथ वैतनिक भी हैं, इसके कारण वे "अहो रूपं, अहो ध्वनि" वाला प्रसंग यदि प्रस्तुत करें तो उसमें उनका स्वार्थ उनको बाध्य कर सकता है तथा गृहस्थ होने के कारण शायद

वे सत्य बोलने की प्रतिज्ञा वाले भी नहीं होंगे, अतः आचार्य हस्तीमलजी के विषय में उनका कथन अतिशयोक्ति से भरपूर हो तो उसमें आश्चर्य ही क्या ?

रही बात पूर्वाचार्यों की, सो वे तो भवभीरु और पंचमहाव्रतों के धारक सत्यप्रतिज्ञ थे, झूठ और अतिशयोक्तिपूर्ण लिखने का जिनको कोई प्रयोजन ही नहीं था । ऐसे सत्यप्रिय जैन पूर्वाचार्य कथाग्रन्थ के चरित्रचित्रण में अतिशयोक्ति क्यों करेंगे ?

तथा छद्मस्थ होने के कारण पूर्वाचार्यों के कथन को अतिशयोक्तिपूर्ण कहने पर तो तीर्थंकर और केवलज्ञानियों को छोड़कर अन्य सब झूठे ही ठहरेंगे, फिर तो स्वयं छद्मस्थ आचार्य हस्तीमलजी का साहित्य सर्वथा झूठा और अप्रमाणिक सिद्ध हो जाता है । खैर ! आचार्य द्वारा रचित इस इतिहास में ऐसी तो अनेक गलतियां भरी पड़ी हैं, जो गजसिंहजी राठौड़ द्वारा कथित उनकी क्षीर–नीर विवेक-मयी तीव्र बुद्धि पर बड़ा प्रश्नार्थचिह्न लगाने वाली है ।

आचार्य हस्तीमलजी के विषय में ऐसी ही अतिशयोक्ति पूर्ण बात पंडित श्री दलसुखजी मालवणिया ने भी लिखी है । खंड–१, पृ० ६ पर "प्रकाशकीय नोंध" में पंडित दलसुखजी मालवणिया के प्रशंसा सूचक वचन को आकर्षक रूप में प्रगट किया गया है । वे आचार्य के इतिहास के विषय में अनुचित खुशामद करते हैं कि—

✡ ✡ ✡ बहुत काल तक आपका यह इतिहास ग्रंथ प्रामाणिक इतिहास के रूप में कायम रहेगा । नये तथ्यों की संभावना अब कम ही है । ✡ ✡ ✡

मीमांसा—ऐसा लगता है श्री मालवणियाजी को संपूर्ण इतिहास ध्यान से पढ़ने का समय ही न मिला हो, संभव है सिर्फ ऊपर-ऊपर से देखकर ही जरूरत से ज्यादा आत्मविश्वास और साहस के

साथ उक्त निर्णय उन्होंने दे दिया हो, क्योंकि इतिहास में जगह जगह पर "यह विचारणीय है", "इस पर विशेष प्रकाश इतिहासज्ञ डालेंगे," इस प्रकार लिखकर अनेक प्रश्नों को इतिहासकार आचार्य हस्तीमलजी ने अपूर्ण एवं अनिर्णित ही छोड़ दिया है। यथा खंड-१ (पुरानी आवृत्ति) 'अपनी बात' में पृ० १७ पर भगवान श्री महावीर स्वामी का रात्रि विहार एवं ब्राह्मण को अर्धवस्त्रदान आदि बातों के विषय में आचार्य लिखते हैं कि—

✲ ✲ ✲ इन सब की संगति क्या हो सकती है ? इस पर गीतार्थ गंभीरता से विचार करें। ✲ ✲ ✲

मीमांसा—मुख्य सम्पादक गजसिंहजी आचार्य हस्तीमलजी को अथाहज्ञानी, घोर परिश्रमी आदि अत्युच्चकोटि के गुणों के मालिक कहते हैं, कथित गुणों से युक्त आचार्य ने उक्त विषयों को अन्य के भरोसे क्यों छोड़ा ? "अथाहज्ञानी" (!) आचार्य स्वयं ने इस पर गंभीरता से विचार क्यों नहीं किया ? ऐसी दशा में गजसिंहजी द्वारा की गयी आचार्य की खुशामद क्या आत्मवंचक नहीं ठहरती ? और इस बात से मालवणियाजी का भी भ्रम नष्ट हो गया होगा।

जिसको बौद्धधर्म सम्बन्धित बताया जाता है, ऐसे "बौद्ध धर्मचक्र" और चतुर्मुख सिंहाकृति वाला सारनाथ के स्तंभ के विषय में आचार्य खंड-२, पृ० ४५१ पर लिखते हैं कि—

✲ ✲ ✲ सिंह का संबंध बुद्ध के साथ उतना संगत नहीं बैठता जितना कि भगवान महावीर के साथ। भगवान महावीर का चिन्ह (लांछन) सिंह था और केवलज्ञान की उत्पत्ति के पश्चात् भगवान महावीर के साथ-साथ सिंह का चिन्ह भी चतुर्मुखी दृष्टिगोचर होने लगा था। सिंह चतुष्टय पर धर्म-चक्र इस बात का प्रतीक है कि जिस समय तीर्थंकर विहार करते हैं, उस समय

धर्मचक्र नभमण्डल में उनके आगे आगे चलता है । इस प्रकार के अनेक गहन तथ्य हैं, जिनके सम्बन्ध में गहन शोध की आवश्यकता है । ❂ ❂ ❂

मीमांसा—"केवलज्ञान के बाद भगवान श्री महावीर स्वामी चतुर्मुखी दृष्टिगोचर होने लगे थे"—इस तथ्य में प्रतिमा का सिद्धान्त समाया हुआ है, क्या आचार्य इस सत्य को स्वीकार करेंगे ? और प्रस्तुत में आचार्य स्वयं कह रहे हैं कि—"इस प्रकार के अनेक गहन तथ्य हैं, जिनके सम्बन्ध में गहन शोध की आवश्यकता है," स्वयं आचार्य द्वारा लिखित इस बात पर से मालवणियाजी का कथन "नये तथ्यों की संभावना अब कम ही है" सर्वथा अप्रमाणिक और झूठ ही सिद्ध होता है । साथ ही साथ मुख्य संपादक श्री गजसिंहजी द्वारा कथित "घोर परिश्रमी" आचार्य स्वयं क्यों उक्त विषयों में गहन शोध नहीं करते हैं ?

आचार्य हस्तीमलजी ने "संभव है" ऐसा लिखकर प्राचीन जैनाचार्यों के कथन को अप्रमाणिक करते हुए पौराणिक गपौड़ों को भी मान्यता दी है एवं जिनमन्दिर और जिनप्रतिमा आदि के विषय में ऐतिहासिक शिलालेखों आदि अवशेष विशेषों के सत्य होते हुए भी आचार्य ने अपने इतिहास में गलत एवं कल्पित जो बातें लिखी हैं, इन बातों का मालवणियाजी को अगर थोड़ा सा भी पता होता तो आचार्य द्वारा लिखित अप्रमाणिक इतिहास की प्रशंसा करने का साहस वे नहीं करते । इस तथ्य को मालवणियाजी सर्वथा भूल ही गये हैं कि कोई भी स्थानकपंथी चाहे वह आचार्य पदारूढ़ क्यों न हो, जैन धर्म विषयक सत्य और प्रामाणिक इतिहास लिख ही नहीं सकता, क्योंकि जैनधर्म के इतिहास के मूल में जिनमंदिर और जिनप्रतिमा का एक अनूठा ही स्थान है, जिन से स्थानक पंथियों को दुश्मनी है ।

अंग्रेज विद्वान डा० हर्मन जैकोबी के विषय में आचार्य हस्तीमलजी निम्न बात लिखते हैं, इससे 'नये तथ्यों की संभावना अब

कम ही है"—ऐसा मालवणियाजी का लिखना कितना आत्मवंचक एवं भ्रामक है, इस बात की पुष्टि अपने आप हो जाती है। अंग्रेज विद्वान डा० हर्मन जैकोबी के जैनधर्म विषयक कथनों के विषय में खंड १, पृ० ७६८ पर आचार्य लिखते हैं कि—

✲ ✲ ✲ डा० जैकोबी की धारणा के बाद ३१ वर्ष के सुदीर्घ काल में इतिहास ने बहुत कुछ नई उपलब्धियां की हैं, इसलिए भी डा० जैकोबी के कथन को अन्तिम रूप से मान लेना यथार्थ नहीं है। ✲ ✲ ✲

मीमांसा—इसी प्रकार हमारा भी यही कहना है कि "नये तथ्यों की संभावना अब कम ही रही है"—ऐसा पंडित श्री मालवणियाजी का लिखना अनुचित एवं तथ्यहीन होने के कारण अविश्वसनीय ही है।

जिनपूजनसत्कारयोः करणलालसः

खल्वाद्यो देशविरति परिणामः।

अर्थात्—देशविरति (श्रावक) धर्म का आद्य परिणाम श्री जिनेश्वर भगवान की पूजा और सत्कार करने की लालसा है। यानी जिसे श्री जिनेश्वर भगवान की पूजा और सत्कार करने की लालसा नहीं है, उसे पंचम गुणस्थानक स्वरूप देशविरति-श्रावकपन का आद्य परिणाम भी प्राप्त नहीं है।

—१४४४ ग्रंथ के रचयिता श्री हरिभद्रसूरिजी महाराज

[प्रकरण–२८]

राजा सम्प्रति के साथ अन्याय

स्थानकपंथी संप्रदाय के कर्णधार माने जाने वाले आचार्य ने अपने इतिहास में जिनमन्दिर एवं जिनप्रतिमादि विषयों पर तोड़–मरोड़ की प्रक्रिया प्रचुर मात्रा में की है। आश्चर्य तो इस बात का है, आचार्य ने नामधारी समिति द्वारा जीचाहा इतिहास बनाया है, जिसको जैनधर्म का इतिहास कहना जैनधर्म की मजाक उड़ाने के समान है। आचार्य का इतिहास भ्रामक एवं कपोत कल्पित तत्त्वों से परिपूर्ण है, वह उनकी गरिमा के अनुरूप नहीं है। खंड–२, पृ० ६३३ पर आचार्य लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ आर्यवृद्ध देव के पश्चात् आर्य प्रद्योतनसूरि गणाचार्य हुए। पटट्रावलियों में इस प्रकार का उल्लेख उपलब्ध है कि अजमेर और स्वर्णगिरि में आपने प्रतिष्ठा करवायी थी। पर स्वर्गीय मुनि कान्तिसागरजी के अनुसार इतिहास के प्रकाशन में इस प्रकार के उल्लेखों की सच्चाई संदिग्ध मानी गई है। ☼ ☼ ☼

मीमांसा—अजमेर और स्वर्णगिरि में आचार्य श्री प्रद्योतन-सूरिजी ने किसकी प्रतिष्ठा करवायी थी? जिनमूर्ति प्रतिष्ठा के इस सत्य को तो आचार्य ने छिपा ही लिया। कल्पसूत्र और नंदीसूत्र की प्राचीन पटट्रावलियों के प्रामाणिक और विश्वसनीय प्रमाण को छोड़कर इतिहासकार (!) आचार्य ने अपना उल्लू सीधा करने के लिये स्वर्गीय

श्वे० जैन तीर्थ श्री क्षत्रियकुण्ड–लछवाड (बिहार)
अति प्राचीन श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी
की शैलेशीकरण अवस्था में भव्य जिन प्रतिमा
(पाल कालीन)

मुनि कान्तिसागरजी के वचनों का कल्पित सहारा लिया है। आचार्य हस्तीमलजी ने यह तो लिखा ही नहीं है कि श्री कान्तिसागरजी कब हुए? और वे कौनसे प्रामाणिक इतिहासकार थे? कौनसे ग्रन्थ के किस पृष्ठ पर उन्होंने ऐसा लिखा है कि—"इतिहास के प्रकाशन में इस प्रकार के उल्लेखों की सच्चाई संदिग्ध मानी गई है।" इस प्रकार के यानी कौन से प्रकार के? श्री कान्तिसागरजी के इस विषय में कौनसी न्यायसंगत युक्ति दी है? इन सब प्रश्नों का सत्यप्रतिज्ञ आचार्य को प्रमाणिक उत्तर देना चाहिए और स्वर्गीय कान्तिसागरजी ने क्या ऐसा लिखा है कि—"अजमेर और स्वर्णगिरि में प्रद्योतनसूरि ने प्रतिष्ठा नहीं करवायी है?" इसका भी उत्तर आचार्य दें। बात तो यह है कि नंदीसूत्र और कल्पसूत्र की प्रामाणिक एवं प्राचीन पट्टावलियों का तथ्यपूर्ण सहारा लेना छोड़कर स्वर्गीय कान्तिसागरजी के नाम से अतात्विक, ऊटपटांग और इधर–उधर की किंवदन्ती स्वरूप तथ्यहीन बात का सहारा आचार्य ने क्यों लिया? इन सब बातों से आचार्य की स्वेच्छाचारिता सिद्ध होती है, अतः हमारा यही कहना है कि आचार्य हस्तीमलजी द्वारा रचित इतिहास सच्चाई से सर्वथा रहित ही है।

आश्चर्य तो तब होता है कि सत्य तथ्य को तोड़–मरोड़ कर विपरीत रूप से लिखने वाले खंड–१ (पुरानी आवृत्ति) पृ० ७० पर इतिहासज्ञों को हितशिक्षा देते हैं कि वस्तुस्थिति के अन्तःस्तल तक पहुँचकर सत्य का अन्वेषक बनना चाहिए। यथा—

✲✲✲ खेद है कि हम अपनी दृष्टि से किसी भी विषय के अन्तःस्तल तक नहीं पहुँचते और पुरानी लकीर के ही फकीर बने हुए हैं। ✲✲✲

मीमांसा—प्रतिमापूजा और जिनमन्दिर आदि जैनधर्म के विषयों के अन्तःस्तल तक आचार्य आदि स्वयं क्यों नहीं पहुँचते? वे स्वयं

क्यों सत्य का पक्ष छोड़कर असत्य और झूठ का सहारा लेकर पुरानी लकीर के ही फकीर बन बैठे हैं ? सत्य के पक्षधर बनने में उनको कौन बाधा दे रहा है ?

पुरानी लकीर के फकीर बनकर ही आचार्य ने एक विषैला सूत्र प्रचार करवाया है, यथा—

गुरु हस्ती के दो फरमान ।
सामायिक स्वाध्याय महान ।।

यद्यपि देखने में यह सूत्र निर्दोष लगे किन्तु इसके पीछे एकान्तवाद समाया हुआ है अतः उनका यह सूत्र गलत है । क्या सामायिक और स्वाध्याय ही महान हैं ? क्या तप, त्याग, ज्ञान-ध्यान, ब्रह्मचर्य, प्रभुभक्ति, गुरुसेवा, अहिंसा आदि धर्मकार्य महान नहीं हैं ? सच तो यह है कि फरमान करने वाले गुरु हस्तीमलजी है ही कौन ? किन्तु उनको पूछने वाला भी कौन है ?

पूर्वजन्म के दीक्षादाता उपकारी गुरु आर्य श्री सुहस्ति महाराज को देखकर राजा संप्रति को पूर्वजन्म का स्मृतिज्ञान हो गया था । "पूर्वजन्म में गुरु ने दीक्षा देकर उपकार किया था, इसके कारण मैंने इस जन्म में राजऋद्धि पायी है" ऐसा सोचकर उपकारी गुरु के उपकार के बदले में गुरु की प्रेरणा से राजा संप्रति ने सवालाख जिन मन्दिर और सवा करोड़ जिनप्रतिमा बनवायी थीं । इस विषय में "जिन प्रतिमा मंडन" नामक सुप्रसिद्ध स्तवन में न्यायविशारद श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्याय लिखते हैं कि—

वीर पंछी बसे नेवुं वरसे, संप्रति राय सुजाण ।
सवा लाख प्रसाद कराव्या, सवा कोड़ी बिंब स्थाप्या,

हो कुमति क्यों प्रतिमा उत्थापी ?
ये जिन वचन से स्थापी ।।

जैनागम को प्रमाण करके आर्य श्री सुहस्ति महाराज ने संप्रति राजा को जैन संस्कृति के प्रचार प्रसार हेतु जिनमंदिर एवं जिन-प्रतिमा बनवाने की प्रेरणा दी थी, इस सत्य की "तपागच्छ पट्टावली" नामक प्राचीन ग्रन्थ भी पुष्टि करता है । इस ग्रन्थ के आधार पर स्वयं आचार्य हस्तीमलजी भी खंड २, पृ० ४५६ पर लिखते हैं कि—

✵ ✵ ✵ सम्प्रति के विषय में कतिपय जैन ग्रन्थों में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है कि उसने भारत के आर्य एवं अनार्य प्रदेशों में इतने जैन मंदिरों का निर्माण करवाया था कि वे सारे प्रदेश जिनमन्दिरों से सुशोभित हो गये ।

[तपागच्छ पट्टावली] ✵ ✵ ✵

मीमांसा—'कतिपय' शब्द से आचार्य का क्या तात्पर्य है यह अस्पष्ट ही है । स्थानकपंथ के आद्यप्रणेता जैन गृहस्थी लोंकाशाह ने दीक्षा ली थी (?) ऐसा कहीं से अल्पविराम सा सहारा मिलने पर पूर्णविराम तक लिखने के कलाकार आचार्य हस्तीमलजी कतिपय ग्रन्थों का प्रामाणिक सहारा होने पर भी जिनप्रतिमा जैसे ऐतिहासिक सत्य तथ्य को क्यों नहीं मानते हैं ? वृत्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकादि शास्त्र भी इस तथ्य से सहमत हैं, फिर भी आचार्य अप्रमाणिक वर्तन क्यों करते हैं ? क्योंकि उसी पृष्ठ पर आचार्य स्वयं लिखते हैं कि—

✵ ✵ ✵ चूर्णि और निर्युक्तियों में यह भी सूचित किया गया है कि सम्प्रति ने प्रचुरमात्रा में जिनमूर्तियों की मंदिर एवं देवशालाओं में स्थापना करवा कर जैन संस्कृति और सभ्यता को स्थान–स्थान पर फैलाया था । ✵ ✵ ✵

मीमांसा—उक्त कथनानुसार वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति आदि शास्त्रों का प्रामाणिक सहारा होते हुए भी एवं प्राचीन मंदिर, मूर्ति, शिलालेख आदि का तथ्य होते हुए भी आचार्य हस्तीमलजी सम्प्रदायवाद के व्यामोह में मूलपथ से विचलित होकर मृषावाद का आश्रय खंड २, पृ० ४५६ पर इस प्रकार करते हैं कि—

❂ ❂ ❂ जहाँ तक जैन मूर्ति-विधान एवं उपलब्ध पुरातन अवशेषों का प्रश्न है, यह बिना किसी संकोच के कहा जा सकता है कि राजा सम्प्रति द्वारा निर्मित मंदिर या मूर्तियाँ भारतवर्ष के किसी भी भाग में आजतक उपलब्ध नहीं हो पाई हैं। ❂ ❂ ❂

मीमांसा—अचार्य पदारूढ़ व्यक्ति का यह एक सफदे झूठ है। मूर्ति में मूर्तिमान के दशर्न करने के ज्ञान से जो अनभिज्ञ हैं एवं जो मंदिर में जाना पाप समझते हैं और अपने अनुयायियों को मन्दिर में नहीं जाने की सौगन्ध दिलाते हैं, उन्हें सम्प्रतिराजा द्वारा बनवायी गयी प्रतिमा देखी ही क्या होगी? अगर आचार्य निष्पक्ष होकर खोज करते तो जयपुर, आमेर, जैसलमेर, पाली आदि में ही सम्प्रति कालीन मूर्तियों के उन्हें दर्शन हो जाते।

"बिना संकोच कहा जा सकता है कि संप्रति निर्मित मूर्तियाँ कहीं भी उपलब्ध नहीं हैं"—बिना प्रमाण ऐसा लिखने की आचार्य हस्तीमलजी जब धृष्टता और बेईमानी ही करते हैं तब तो उनको यह अवश्य खोज निकालना चाहिए कि सम्प्रति द्वारा निर्मित जिनप्रतिमा के रूप में जो प्रतिमाएँ हजारों वर्षों से प्रसिद्धि पाई हुई आज विधमान हैं, वे प्रतिमाएँ किसके द्वारा निर्मित हैं? आचार्य अगर यह कहें कि हम ऐसी खोज करने को बेकार नहीं बैठे हैं, तब तो वे झूठे इतिहासकार बन बैठें हैं, यह सिद्ध होता है।

अपरंच ऐतिहासिक तथ्यों से संप्रतिराजा द्वारा निर्मित प्रतिमा का प्रामाणिक सत्य सिद्ध होते हुए भी "तुष्यतु दर्जन न्यायेन" मान भी लिया जाए कि राजा सम्प्रति द्वारा निर्मित मूर्तियां भारतवर्ष के किसी भी भाग में आज तक उपलब्ध नहीं हो पाई हैं, फिर भी जैनागम, वृत्ति, निर्युक्ति आदि शास्त्र क्या झूठे हो सकते हैं ? धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि शास्त्र कथित शूक्ष्म तत्वों को हम देख-समझ न पाएं इस से क्या शास्त्रों की प्रामाणिकता नष्ट हो सकती है ? अनंतकाय के एक शरीर में अनंतजीवों की बात शास्त्र करते हैं, तो क्या उसके विषय में भी आगम निरपेक्ष शंका कुशंका करके आलू का बड़ा, लहसुन की चटनी, और गाजर का हलुवा आदि अनन्तकाय [जमीकन्द] के भक्षण को क्या आचार्य एवं स्थानकपंथी उचित समझेंगे ? फिर तो आगम कथित एक भी बात श्रद्धा करने योग्य नहीं रहेगी।

जिनप्रतिमा के विषय में पट्टावलियां आदि शास्त्रों के उपरांत ध्वंसावशेषों का ऐतिहासिक सत्य तथ्य होते हुए भी आचार्य अंधेरे में ही रहना पसन्द करते हैं। वे खंड २, पृ० ४५६ पर लिखते हैं कि—

❋ ❋ ❋ श्वेत पाषाण की कोहनी के समीप गांठ के आकार के चिन्हवाली प्रतिमाएँ जैन समाज में प्रसिद्ध रही हैं और उन सभी का सम्बन्ध राजा संप्रति से स्थापित किया जाता है। ऐसी प्रतिमाओं के अनेक स्थानों पर प्रतिष्ठापित होने का उल्लेख किया गया है। मेरी विनम्र सम्मति के अनुसार ये श्वेत पाषाण की प्रतिमाएँ सम्प्रति अथवा मौर्यकाल की तो क्या तदुत्तरवर्ती काल की भी नहीं कही जा सकती। ❋ ❋ ❋

मीमांसा— श्वेतपाषाण की कोहनी के समीप गांठ के आकार के चिन्हवाली प्रतिमाएँ "जैन समाज" में प्रसिद्ध रही हैं।" ऐसा आचार्य लिखते हैं तो जैनसमाज से उन्हें यहाँ क्या अभिप्रेत है ? क्योंकि

श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों जैन समाज प्रतिमा और प्रतिमापूजा में विश्वास करते हैं और स्थानकपंथी नहीं करते हैं, ऐसी दशा में आचार्य हस्तीमलजी के "जैन समाज" ऐसा कथनानुसार क्या स्थानकपंथी समाज स्वतः ही "जैनाभास" सिद्ध नहीं हो जाता है ?

"ऐसी प्रतिमा अनेक स्थानों पर प्रतिष्ठापित की गयी हैं" इस प्रकार का शास्त्रोक्त कथन होते हुए भी धृष्टता का अवलंबन लेकर लिखना कि—"मेरी विनम्र सम्मति के अनुसार ये श्वेत पाषाण की प्रतिमाएँ सम्प्रति अथवा मौर्यकालिन तो क्या तदुत्तरवर्ती काल की भी नहीं कही जा सकती।" किन्तु आचार्य का ऐसा लिखना सर्वथा कपटपूर्ण है, क्योंकि फिर ये प्रतिमाएँ कौनसे काल की हैं यह तो उनको बताना ही चाहिए एवं आचार्य की नम्र सम्मति प्रमाणभूत आधार पर है या निराधार ? शास्त्र सापेक्ष है या निरपेक्ष ? आगमानुसार ही है या आगम विपरीत ? तत्त्वानुसारी है या तत्त्वविनाशक ? ये प्रश्न विचारणीय हैं। जैसे "व्याघ्री अपने बच्चे को सौम्य और अक्रूर मानती है" इसी प्रकार आचार्य की सम्मति अगर कल्पित मात्र है तो अकिंचित्कर है। शास्त्र में ऐसी सम्मति को मिथ्याभिमान कहा है। ऐसी अप्रमाणिक मिथ्या सम्मति इतिहास की सच्चाई में मूल्यहीन मानी गई है, क्योंकि प्रामाणिकता की कसौटी पर ऐसी मनमानी सम्मति झूठी ही ठहरती है।

जिनप्रतिमा के विषय में आचार्य हस्तीमलजी का द्वेष कितना है, इस विषय में राजा सम्प्रति का एक ही दृष्टांत बहुत कुछ प्रकाश डालता है।

[प्रकरण–२६]

अवंति सुकुमाल और जिनमंदिर

एक बार पूज्य आर्य श्री सुहस्ति महाराज अपने शिष्य समुदाय सहित अश्वशाला में ठहरे। स्वाध्याय के अवसर पर साधुओं के मुँह से देवलोक स्थित नलिनी गुल्म विमान का वर्णन सुनकर अवंति सुकुमाल को पूर्वजन्म का जाति स्मरण ज्ञान हो गया। उसने देवलोक के नलिनी गुल्म विमान से यहाँ मनुष्य जन्म लिया था, ऐसा जानकर उसने आचार्य आर्य सुहस्तिजी के पास चारित्र लिया और रात्रि में श्मशान में ध्यानस्थ रहा। वहाँ लोमड़ी और इसके बच्चों ने उपसर्गकर श्री अवंतिसुकुमाल मुनि को मरणान्त कष्ट दिया। समभाव और समाधि से मरण के बाद पुनः वे उसी नलिनी गुल्म विमान में उत्पन्न हुए। गुरु महाराज का उपदेश सुनकर माता और बत्तीस पत्निओं ने अपना शोक दूर किया और एक सगर्भा स्त्री को छोड़कर सभी ने वैराग्य पूर्वक चारित्र ग्रहण किया। समय पाकर सगर्भा स्त्री को पुत्र जन्म हुआ जिसका नाम महाकाल था। जिसने बड़े होकर अपने सांसारिक पिता की स्मृति में अवंति सुकुमाल मुनि के अग्निसंस्कार स्थान पर "अवंति पार्श्वनाथ" का मंदिर बनवाया। जो बाद में "महाकाल मंदिर" के नाम से महान तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज द्वारा रचित "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष" नामक इतिहास में यह भी सूचित किया है कि—

भगवान श्री महावीर स्वामी के निर्वाण से २५० वर्ष बाद आचार्य श्री आर्य सुहस्ति महाराज द्वारा प्रतिष्ठित और श्री अवंति-सुकुमाल मुनि की स्मृति में उनके पुत्र द्वारा निर्मित श्री पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा "श्री अवंति पार्श्वनाथ" के नाम से आज भी उज्जैन में बिराजित हैं।

कालक्रम से अन्य धर्मियों द्वारा शिवलिंग स्थापित कर इस प्रतिमा को ढ़क दिया था। जिसको विक्रम संवत् प्रवर्त्तक राजा विक्रमादित्य के समय में प्रभावक आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरिजी ने कल्याण मंदिर स्तोत्र की रचना द्वारा पुनः प्रगट किया था। उनके द्वारा रचित "कल्याण मंदिर स्तोत्र" आज भी जैन समाज में अत्यन्त प्रसिद्ध है, जिस स्तोत्र के पीछे "अवंति पार्श्वनाथ" की प्रतिमा का रहस्य छीपा हुआ है।

श्री अवंति सुकुमाल के चरित्र में "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" का उल्लेख पूर्वक खंड २, पृ० ४६२ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

आचार्य हेमचन्द्र द्वारा परिशिष्ट पर्व में किये गये उल्लेख के अनुसार अवंति सुकुमाल के पुत्र ने अपने पिता की स्मृति में उनके मरण स्थल पर एक विशाल देवकुल का निर्माण करवाया जो आगे चलकर महाकाल के नाम से विख्यात हुआ।

[परिशिष्ट पर्व, सर्ग–११]

मीमांसा—प्राचीन, ज्ञानवन्त, धुरंधर विद्वान् पूज्यपाद् कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य महाराज साहब को सिर्फ आचार्य हेमचन्द्र इतना अबहुमान सूचक शब्द प्रयोग आचार्य ने किया है जिसका हमें खेद है। अपरंच "देवकुल" ऐसा क्लिष्ट और संदिग्ध प्रयोग

आचार्य द्वारा अनावश्यक किया गया है, प्रामाणिकता पूर्वक जिनमन्दिर ऐसा लिख देते तो क्या होता ?

यहां जिन मन्दिर के विषय में "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" के रचयिता आचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि महाराज का नाम देकर आचार्य ने स्वयं को मन्दिर के मामले में अलिप्त रखना चाहा है, चूंकि स्थानक-पंथी भक्तगण उनसे चौंक न उठें। किन्तु मंदिर की बात पूज्यपाद हेमचन्द्राचार्य महाराज के नाम पर लिखकर भी आचार्य बच नहीं सकते, सत्य तो स्वीकारना ही चाहिए, क्योंकि "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" को स्वयं उन्होंने ही प्रामाणिक ग्रंथ बताया है। यथा—

यह है आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि द्वारा विरचित त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र का उल्लेख जो पिछली आठ शताब्दियों से भी अधिक समय से लोकप्रिय रहा है। [खंड २, पृ० ५६]

मीमांसा—उक्त बातों से जिन प्रतिमा और जिन मंदिर की प्रामाणिकता सिद्ध होते हुए भी आचार्य अंधकार में रहना क्यों पसन्द करते हैं ? यह उनकी आचार्य पद की गरिमा के बिलकुल प्रतिकूल है।

पिछले चार पांच सौ वर्षों में जितना भी मूर्ति का विरोध हुआ है, उसमें इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं दिया गया कि मूर्ति-मूर्तिमान का स्मारक है, न कि जिस धातु की बनी है उसका। स्वयं के फोटो बड़े चाव से खिचवाने वाले यदि वे अपने अन्दर झाँककर एक बार देखें तो सब कुछ स्पष्ट हो जाएगा।

—डा० श्री हुकमचन्द भारिल्ल

[प्रकरण–३०]

पूज्य श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण

भगवान श्री महावीर स्वामी के निर्वाण के पश्चात करीब ६८० वर्ष बाद वल्लभीपुर में जिन महापुरुष ने श्रमणों को इकट्ठा करके आगम वाचना करवायी थी और जैनागमों को तालपत्रों पर लिखवाकर सुरक्षित करवाया एवं हमारे तक पहुँचाया उन महोपकारी श्री देवर्द्धि-गणि क्षमाश्रमण का जीवन कवन इस प्रकार है।

देवर्द्धिगणि पूर्वजन्म में हरिणैगमेषी देव थे। आकाशगामिनी विद्याधारक चारणमुनि से उसने ऐसी बात जानी कि—"वह दुर्लभ बोधि है किन्तु वे भगवान श्री महावीर देव के शासन की महासेवा जैनागमों को पुस्तकारूढ़ करवाकर करेंगे।" अपने भावि जीवन का वृत्तान्त सुनकर हरिणैगमेषी देव ने ऐसी व्यवस्था की कि उसकी मौत के बाद, उसके स्थान पर आने वाला उत्तरवर्ती (अन्य) हरिणैगमेषी देव इसको बोधिलाभ की प्राप्ति करावे। नवोत्पन्न हरिणैगमेषी देव ने देवर्द्धि को बोधिलाभ की प्राप्ति हेतु अनेकों प्रयास किये, किन्तु वह असफल रहा। शिकार खेलने का व्यसनी देवर्द्धि एक बार शिकार खेलते समय खड्डे में गिर गया। देव ने इसे इस प्रतिज्ञा से बचाया कि वह चारित्र ले। बाद में देवर्द्धि ने बोधिलाभ पूर्वक चारित्र लिया। आपके सुन्दर चारित्र के पालन से प्रभावित होकर कपर्दियक्ष, चक्रेश्वरी देवी तथा गोमुख यक्ष आपको प्रत्यक्ष थे और आपकी सेवा हेतु सदा तत्पर रहते थे। आपने

वल्लभीपुर में श्रमण संघ को इकट्ठा करवाकर आगमिक वाचना करवायी थी और जैनागमों एवं आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य को चिर स्थायी बनाकर अपार उपकार किया था।

खंड २, पृ० ६७६ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

✡✡✡ आप पूर्व जन्म में हरिणैगमेषी देव थे। नवोत्पन्न हरिणैगमेषी देव देवर्द्धि को सन्मार्ग पर लाने हेतु विभिन्न उपायों से समझाने का प्रयास करने लगा। ✡✡✡

✡✡✡ उस समय सहसा देवर्द्धि के कानों में ये शब्द पड़े—"अब भी समझ जाओ, अन्यथा तेरी मृत्यु तेरे सन्मुख खड़ी है।" भय विह्वल देवर्द्धि ने गिड़गिड़ाकर कहा—"जैसे भी हो सके मुझे बचाओ, तुम जैसा कहोगे वही मैं करने के लिये तैयार हूँ। ✡✡✡

✡✡✡ देव ने तत्काल उसे उठाकर आचार्य लोहित्य सूरि के पास पहुँचा दिया और देवर्द्धि भी आचार्य लोहित्य का उपदेश सुनकर उनके पास श्रमण धर्म में दीक्षित हो गये। ✡✡✡

✡✡✡ बाद में वीर निर्वाण पश्चात् ९८० साल बाद आपने बल्लभीपुर में आगम वाचना करके शास्त्र पुस्तकारूढ करवाके वर्णनातीत उपकार किया। ✡✡✡

मीमांसा—यहां तक पूज्य देवर्द्धि गणि के विषय में सही सही लिखने वाले आचार्य ने जैसे ही शासन रक्षक देव-देवियाँ एवं यक्ष आदि की बात आयी कि वहाँ उन्होंने झूठ का सहारा ले लिया। खंड २, पृ० ६७७ पर आचार्य लिखते हैं कि—

✡✡✡ श्रद्धालुओं द्वारा परम्परा से यह मान्यता अभिव्यक्त की जा रही है कि आपके तप-संयम की विशिष्ट साधना एवं आराधना से

कर्पादियक्ष, चक्रेश्वरी देवी तथा गोमुख यक्ष आपकी सेवा में उपस्थित रहते थे।

मीमांसा—आपने दिल में रहा हुआ पाप आचार्य ने "श्रद्धालुओं द्वारा परम्परा से यह मान्यता अभिव्यक्त की जा रही है"— इन शब्दों में प्रकाशित किया है, क्योंकि यहां श्रद्धालु और परम्परा जैसे घटिया शब्दों की आवश्यकता ही क्या थी ? आचार्य ने यहां 'श्रद्धालुओं' शब्द का तात्पर्यार्थ नहीं लिखा है किन्तु आचार्य का तात्पर्य ऐसे लोगों से हो सकता है जो कि किंवदन्ती या अंधश्रद्धा में विश्वास रखते हों, परन्तु "श्रद्धालुओं" ऐसा शब्द लिखना अनुचित इसलिये है कि तो क्या आचार्य स्वयं 'अश्रद्धालु' हैं ?

तथा 'परम्परा से' ऐसा लिखने के पीछे आचार्य की जघन्य भावना यह रही होगी कि परम्परा से यानी रूढ़ि से यानी गतानुगतिकता से श्रद्धालुभक्त ऐसी भावना व्यक्त करते हैं यानी स्वयं आचार्य का इसमें अविश्वास है।

आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य में कहा है साथ साथ आचार्य ने खंड २, पृ० ६७६ पर लिखा है, किन्तु यहाँ 'परम्परा से' एवं 'श्रद्धालु-भक्त' ये दो शब्द लिखना उनका अनुचित ही है। पूज्य देवर्द्धि गणि की सेवा में कर्पादियक्ष, चक्रेश्वरी देवी तथा गौमुखयक्ष रहते थे, तो इस बात में आचार्य को क्या नाराजी है ? "देवा वि तं नमंसंति" इस आगम वचनानुसार संयमी पुरुषों को देव नमस्कार करते हैं यह सत्य तथ्य होते हुए भी 'परम्परा से" "श्रद्धालु" आदि शब्दों के लिखने की आवश्यकता ही क्या है ? आगमिक तथ्य होते हुए भी देव-देवियों के तथ्य का आचार्य अपलाप क्यों करते हैं ?

इतने महान उपकारक आगम-संरक्षक श्री देवर्द्धिगणि महाराज के विषय में आचार्य हस्तीमलजी प्रशंसा के दो शब्द तो न लिख सके किन्तु उपकार का बदला 'परम्परा' और 'श्रद्धालु' जैसे घटिया शब्द लिखकर अपकार से चुकाया है, जिसका हमें खेद है।

जिसके दिल में सूत्राभ्यास द्वारा सद्बोध का प्रादुर्भाव होता है, उसके दिल में ही आगम सूत्र की तात्त्विक स्पर्शना होती है।

—न्यायविशारद पूज्य यशोविजयजी उपाध्यायजी

[प्रकरण–३१]

मथुरा के कंकाली टीले की खुदाई

इतिहास की सत्यता के लिये हस्तलिखित प्राचीन ग्रंथ की तरह प्राचीन शिलालेख, सिक्के, मूर्तियाँ, ताम्रपत्र, ध्वंसावशेष एवं पट्ट आदि को भी प्रामाणिक सामग्री माना गया है।

जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध करने के लिये एवं आगम शास्त्रों की सच्चाई को सिद्ध करने वाली जमीन में से निकाली हुई प्राचीन जिन प्रतिमा और प्रतिमा की चौकियों पर लिखे हुए लेख प्रामाणिक पुरावा (सबूद) है। तक्षशिला के पास 'मोहन-जो-दरो' में प्राचीन जिन प्रतिमा निकली है। उड़ीसा में उदयगिरि तथा खंडगिरि पर्वत पर खुदाई करने से जिनमूर्तियाँ आदि मिली हैं। ऐसे तो सैंकड़ों उदाहरण हैं, जहाँ जमीन में से प्राचीन जिन प्रतिमा आदि मिली हों। इन सबसे जिन मंदिर, जिन प्रतिमा एवं प्रतिमा पूजा प्राचीन काल में भी थी इस तथ्य पर विशद् प्रकाश पड़ता है। आगमशास्त्र और आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकादि भी जिन मंदिर, जिन प्रतिमा एवं जिन पूजा के तथ्यों के समर्थक रहे हैं। ऐसी दशा में अगर स्थानकपंथी स्वयं को प्रामाणिक करते हैं तो उन्हें उक्त सत्य को स्वीकार करना ही चाहिए।

मथुरा के कंकाली नामक एक प्राचीन टीले की खुदाई भारत सरकार द्वारा करने पर सैंकड़ों प्राचीन मूर्तियाँ, सिक्के, चरण पादुकाएं,

पबासन एवं एक स्तूप आदि मिले हैं, उनमें करीब ११० की संख्या में प्राचीन शिलालेख और अनेक मूर्तियां एवं श्री सुपार्श्वनाथ का प्राचीन स्तूप जैनों से सम्बन्धित हैं ऐसा इतिहासज्ञों का निश्चयात्मक रूप से कहना है। इन मूर्तियों के शिलालेखों में मौर्यकाल, गुप्तकाल और कुशाणवंशी राजाओं का समय २००० या २२०० वर्ष पूर्व का कहा जा सकता है। अतः इन अवशेषों को भी इतना ही प्राचीन कहना चाहिए। हमारे जैन पूर्वाचार्यों ने उपकार करके इन राजाओं को जैनधर्म प्रेमी बनाया था और जैन शासनोन्नति हेतु इनसे जैन मंदिर बनवाकर श्री अरिहंत, सिद्ध आदि की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करवायी थीं। इन सब तथ्यों से इतना तो अवश्य स्पष्ट होता ही है कि नय दृष्टि का अभ्यासी एक तटस्थ व्यक्ति कभी भी जिनप्रतिमादि विषयों का विरोध या अनादर नहीं कर सकता है।

"जैन धर्म का मौलिक इतिहास" खंड २, टिप्पणी पृ० ३२ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

मथुरा के कंकाली टीले की खुदाई का कार्य सर्व प्रथम ई० सन् १८७१ में जनरल कनिंघम के तत्त्वावधान में, दूसरी बार सन् १८८८ से १८९१ में डा० फ्यूरर के तत्त्वावधान में तथा तीसरी बार पं० राधाकृष्ण के तत्त्वावधान में करवाया गया। इन तीनों खुदाईयों में जैन इतिहास की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण विपुल सामग्री उपलब्ध हुई। वह सामग्री आज से १८९१ से लेकर १७९८ वर्ष तक की प्राचीन एवं प्रामाणिक होने के कारण बड़ी विश्वसनीय है।

मीमांसा—ये सामग्री "इतिहास की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण है" ऐसा आचार्य का लिखना धोखा मात्र ही है। क्योंकि इन खुदाई में से निकले जिनप्रतिमादि प्राचीन अवशेष सिर्फ इतिहास की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है, किन्तु आत्मा में भरे पड़े मिथ्यात्व अंधकार को दूर

करने और सत्य का प्रकाश करने की दृष्टि से भी बड़ी महत्त्वपूर्ण है, इस तथ्य को आचार्य क्यों भूल जाते हैं ? तथा "यह सामग्री प्राचीन एवं प्रामाणिक होने के कारण बड़ी विश्वसनीय है।" ऐसा लिखने में भी वे कपट ही कर रहे हैं क्योंकि आगम एवं आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य एवं टीकादि ग्रन्थ जिनप्रतिमापूजा की पुष्टि करते हैं और ध्वंसावशेष से इस तथ्य की सत्यता में चार चांद लग गये हैं, फिर भी स्थानकपंथी और आचार्य हस्तीमलजी इस तथ्य की ओर आँखें बन्द कर बैठे हुए हैं सत्य कहा है कि उल्लू को प्रकाश भी बुरा लगता है। जैन इतिहास की सत्यता का सुन्दरतम वर्णन तो एक अभव्य व्यक्ति भी कर सकता है किन्तु सच्ची श्रद्धा पूर्वक अपने दिल में सत्य की स्थापना नहीं करने के कारण उनकी ऐसी सत्य प्ररूपणा की कीमत फटी कौड़ी की भी नहीं रह जाती है, क्या इस तथ्य से आचार्य अनभिज्ञ नहीं हैं ? इतिहास लेखन द्वारा सत्य गवेषणा करके जिनप्रतिमा और जिनमंदिरादि का सत्य तथ्य यदि आचार्य अपने दिल में श्रद्धा और भक्ति पूर्वक स्थापन नहीं करेंगे तो उनका इतिहास का लेखन उनके लिये आत्मवंचना ही होगा, क्योंकि अश्रद्धा पूर्वक की गई सब सत् चेष्टाएँ भी जैनागमों में संसार वर्धक ही मानी गई हैं।

कंकाली टीले में से निकले हुए प्राचीन अवशेषों से आचार्य हस्तीमलजी ने कल्पसूत्र एवं नन्दीसूत्र की स्थविरावलियों को प्रामाणिक और विश्वसनीय सिद्ध किया है, किन्तु मूर्तिमान्यता के विषय में एक शब्द भी लिखना उन्हें अभिष्ट नहीं है, जिसका हमें खेद है। एक आचार्य पदारूढ़ इतिहासकार प्रामाणिकता और तटस्थता की प्रतिज्ञा करने पर भी इतनी धृष्टता करे क्या यह खेद की बात नहीं है ?

खंड २, पृ० ३२ पर टिप्पणी नोंध में आचार्य की कपट वचन रचना इस प्रकार है—

विश्ववंद्य भगवान श्री महावीर स्वामी

कंकाल टीला, मथुरा से प्राप्त, ईसा की १–२ शताब्दी
वर्तमान में मथुरा म्यूजियम में है ।

❂ ❂ ❂ मथुरा के कंकाली टीले की खुदाई से निकले ई० सन् ८३ से १७६ तक के आयोग पट्टों, ध्वजस्तम्भों, तोरणों, हरिणैगमेषी देव की मूर्ति, सरस्वती की मूर्ति, सर्वतोभद्र प्रतिमाओं, प्रतिमा पट्टों एवं "मूर्तियों की चौकियों" पर उट्टंकित शिलालेखों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि वस्तुतः ये दोनों स्थविरावलियां अति प्राचीन ही नहीं, प्रामाणिक भी हैं। ❂ ❂ ❂

मीमांसा—आचार्य का हरिणैगमेषी देव की मूर्ति, सरस्वती को मूर्ति ऐसा लिखने के बाद "मूर्तियों की चौकियों" ऐसा लिखना मायाचार ही है, क्योंकि परिशेष न्याय से "मूर्तियों की चौकियों" का अर्थ तो 'तीर्थंकर भगवान की मूर्तियों की चौकियों" ही होता है, जो छलकपट पूर्वक न लिखकर आचार्य ने पक्षपातपूर्ण वर्तन किया है। फिर खंड २, पृ० ३९ पर टिप्पणी नोंध में—

❂ ❂ ❂ हमारी चेष्टा पक्षपात विहीन एवं केवल यह रही है *कि वस्तुस्थिति प्रकाश में लायी जाए।* ❂ ❂ ❂

मीमांसा—ऐसा लिखना धोखेबाजी ही है। क्योंकि हरिणैगमेषी देव की मूर्ति, सरस्वती की मूर्ति आदि लिखना और तीर्थंकर की मूर्ति लिखने का जहाँ अवसर आया वहाँ "तीर्थंकर भगवान की मूर्तियों की चौकियाँ" ऐसा न लिखकर सिर्फ "मूर्तियों की चौकियाँ" ऐसा लिखना क्या अनूठा मिथ्याचार नहीं है ?

भगवान का गर्भापहार बालक वर्धमान द्वारा सुमेरु कम्पन आदि के विषय में अन्यों को सत्य वस्तुस्थिति समझाने का प्रयास आचार्य ने किया है, ऐसा प्रयास जिन प्रतिमा के विषय में क्यों नहीं किया ? श्री महावीर स्वामी के विषय में 'मांसभक्षण' का भ्रम दूर करने हेतु आचार्य ने आगम, आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकादि तथा कोष एवं व्याकरण द्वारा स्पष्टीकरण किया है। वैसा ही प्रयास आगमशास्त्र, आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य,

आगमों पर रचित वृत्ति, चूर्णि, भाष्य टीकादि साहित्य एवं व्याकरण और शब्दकोष तथा प्राचीन प्रतिमा पर उट्टंकित शिलालेखों आदि सामग्री आदि का सहारा लेकर जिनप्रतिमा, जिनमंदिर और जिनपूजा आदि विषयों में गवेषणा और तथ्य का अन्वेषण करना अत्यन्त आवश्यक था जिस पर आचार्य ने पर्दा ही डाल दिया, इससे यह सिद्ध होता है कि आचार्य को अंधकार ही पसन्द है।

आचार्य का जैनधर्म विषयक मूर्तियों की चौकियों पर उट्टंकित लेखों से श्रीनन्दीसूत्र और श्री कल्पसूत्र की स्थविरावलियों को प्रमाणित करना और स्वयं मूर्तियों को प्रमाणित नहीं करना यह अर्ध-जरतीय न्याय सर्वथा अनुचित ही माना जाएगा।

निक्खमण नाण निव्वाण, जम्म भूमीउ वंदई जिणाणं ॥

—जिस भूमि से तीर्थंकर भगवान ने जन्म लिया हो, दीक्षा ली हो, केवलज्ञान पाया हो एवं निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त किया हो, उस पवित्र कल्याणक भूमि की (जैनियों को) वंदना-स्पर्शना करनी चाहिए।

—आगमेतर जैन साहित्य में सबसे प्राचीन ग्रन्थ

श्री उपदेशमाला [श्लोक–२३६]

[प्रकरण-३२]

भक्तामर और कल्याणमंदिर स्तोत्र

पूज्य सिद्धसेन सूरिजी ने आगमिक शास्त्रों को प्राकृत भाषा में से विद्वद्भोग्य संस्कृत भाषा में करने के विचार मात्र को गुरु के आगे वाणी द्वारा प्रगट करने पर गुरु ने उन्हें पारांचित प्रायश्चित दिया था। क्योंकि सर्वज्ञ वचनों पर एवं सर्वज्ञों की एक भी क्रिया पर अश्रद्धा प्रगट करना महा अपराध है। सर्वज्ञों ने प्राकृत भाषा में जो वाणी कही है वह आबाल गोपाल के हित के लिये ही कही है, फिर भी उस वाणी को पंडित भोग्य संस्कृत भाषा में परिवर्तन करने का स्वतन्त्र, जिनाज्ञा-निरपेक्ष विचार मात्र प्रगट करने पर धुरंधर विद्वान श्री सिद्धसेनसूरि दिवाकर को पारांचित प्रायश्चित गुरु ने दिया था। इस प्रायश्चित में बारह साल तक वेष छिपाकर रहना होता है और अपने ज्ञानादि गुणों से किसी राजा आदि को जैनधर्म में प्रतिबोध करने पर इसको समाप्ति होती है।

पारांचित प्रायश्चित वहन करने के काल में पूज्य सिद्धसेन-सूरिजी ने राजा विक्रम को प्रतिबोधित किया था। इस विषय में कथानक इस प्रकार है।

गुप्तवेष में पारांचित प्रायश्चित वहन करते करते सूरिजी एक बार शिवमन्दिर में ठहरे। पुजारी के निषेध करने पर भी आचार्य श्री सिद्धसेनजी शिवलिंग के सामने पैर करके सो गये। राजा विक्रम

को बुलाया गया। उस समय श्री सिद्धसेनसूरिजी शिवलिंग के सामने पैर किये ही भगवान की स्तुति बोलने लगे। वे कुछ ही श्लोक बोल पाये थे कि शिवलिंग फटा और उसमें से अद्भुत तेज के साथ श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा प्रगट हुई थी। जिससे राजा विक्रम भी पूज्य सूरिजी की अपार विद्वत्ता से प्रभावित होकर जैनधर्मी बन गया था। भगवान की स्तुति स्वरूप इस स्तोत्र का नाम "कल्याण मन्दिर स्तोत्र" है। जो आज भी जैन समाज में सुप्रसिद्ध है।

आगम एवं आगमेतर प्राचीन शास्त्र लिखित बातों को आमूलचूल बदलने पर भी ये बातें आधुनिक चिंतकों के मन में भायेंगी या नहीं यह विचारणीय प्रश्न है, फिर भी आचार्य हस्तीमलजी जैनागमों की बातों को बदलने के समर्थक रहे हैं, क्योंकि खंड २, पृ० ३८-३९ प्राक्कथन में वे लिखते हैं कि—

इस प्रकार बहुत सी चमत्कारिक रूप से चित्रित घटनाओं को भी इस ग्रन्थ में समाविष्ट नहीं किया गया है। मध्ययुगीन अनेक विद्वान ग्रन्थकारों ने सिद्धसेन प्रभृति कतिपय प्रभावक आचार्यों के जीवन चरित्र का आलेखन करते हुए उनके जीवन की कुछ ऐसी चमत्कार पूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है, जिन पर आज के युग के अधिकांश चिंतक किसी भी दशा में विश्वास करने को उद्यत नहीं होते।

मीमांसा—आधुनिक चिंतकों के पक्षधर बनकर आचार्य हस्तीमलजी ने पूर्वाचार्यों को जो कि पंचमहाव्रत धारी और सत्य प्रतिज्ञ थे उनको झूठा करने की बगावत की है और आधुनिक चिन्तकों की तुष्टिकरण के लिये सुधारवादी विषैला दृष्टिकोण अपनाया है, फिर भी खंड २, पृ० २६ प्राक्कथन में आचार्य लिखते हैं कि—

☼☼☼ यदि प्रत्येक जिन शासनानुयायी में इस प्रकार की जागरूकता उत्पन्न हो जाए तो आज जैनागमों के सम्बन्ध में तथाकथित सुधारवादियों द्वारा जो विषैला प्रचार किया जा रहा है, उसके कुप्रभाव और कुप्रवाह को रोका जा सकता है। ☼☼☼

मीमांसा—हमारा भी यही कहना है कि तथा कथित सुधारवादी आचार्य स्वयं ही हैं, जिन्होंने नामधारी समिति रचकर, स्थानकपंथी स्वमान्यतानुसार "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" लिखकर जैन धर्म के इतिहास के नाम पर काला कलंक लगाया है और जैन समाज में भ्रम एवं विघटन फैलाने का असद् कार्य किया है। उसके कुप्रभाव और कुप्रवाह को रोकने हेतु ही गुरुकृपा से हमने यह मीमांसा रचकर जागरूकता दिखाने का प्रयत्न किया है। जैनागमों, आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य, पूर्वाचार्यों के कथनों और जैनधर्म विषयक प्राप्त प्राचीन शिलालेखों, मूर्तियों आदि ध्वंसावशेष पर जिनको विश्वास हो उन जिन शासनानुयायियों से हमारा निवेदन है कि वे तथाकथित सुधारवादियों की प्रवृत्ति से सतर्क रहें।

स्थानकपंथ के कर्णधार आचार्य हस्तीमलजी ने पट्टावली प्रबन्ध संग्रह, जैनधर्म का मौलिक इतिहास, सैद्धान्तिक प्रश्नोत्तरी, जैन आचार्य चरितावली आदि किताबें लिखकर स्वार्थवश या और भी किसी कारणवश जैन समाज में द्वेष विष फैलाया है। हमने इस विषय में यत् किंचित् प्रयास किया है, लेकिन इस विषय में शास्त्रमर्मज्ञों को अधिक प्रयास करना चाहिए। अन्यथा ऐसे कल्पित इतिहास आदि विषैले साहित्य का प्रचार रुकना असंभव ही है।

"सुधारवादी आधुनिक चिंतकों को नहीं जचे" इसका बहानाबाजी कर आचार्य कह रहे हैं कि श्री सिद्धसेन सूरिजी आदि का चरित्र हमने इस इतिहास में नहीं दिया है, किन्तु यह सर्वथा गलत है, इसका

मुख्य कारण जिन प्रतिमा विरोध ही है अन्यथा श्री मानतुंगसूरिजी के विषय में भी श्री सिद्धसेनसूरिजी के सदृश ही चमत्कारिक घटना घटी है, जिसका वर्णन खंड २, पृ० ६४६ पर आचार्य स्वयं ने अपनी ओर से ही किया है। यथा—

❂❂❂ कमरों के द्वार स्वतः ही खुल गये, आचार्य मानतुंग के सभी बंधन कट गये। ❂❂❂

❂❂❂ उनके द्वारा निर्मित भक्तामर स्तोत्र आज भी जैन *समाज में बड़ी ही श्रद्धा-भक्ति के साथ घर-घर में गाया जाता है।* ❂❂❂

आचार्य श्री मानतुंग सूरिजी को ४४ कमरों में ४४ बेड़ियों से जकड़ कर बन्द करना और एक एक श्लोक के प्रभाव से एक एक बेड़ी का टूटना और कमरे के द्वार स्वतः ही खुल जाना क्या इसको चमत्कारिक घटना नहीं कह सकते? क्या तथाकथित आधुनिक चिंतक इस पर विश्वास करेंगे? आचार्य का छल कपट तो देखो कि श्री आदिनाथ भगवान के भक्तामर स्तोत्र के विषय में श्री मानतुंगसूरिजी की चमत्कार पूर्ण घटना का अपनी ही ओर से उल्लेख करते हैं, जब कि श्री पार्श्वनाथ भगवान के "कल्याण मंदिर स्तोत्र" के विषय में श्री सिद्धसेनसूरिजी की चमत्कार पूर्ण घटना में—शिवलिंग फटना और पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा निकलना, यह बात खंड २, पृ० ५२८ पर आचार्य ने कतिपय कथाग्रन्थों के नाम से लिखकर अप्रमाणिकता की है। यथा—

❂❂❂ राजा द्वारा बारबार आग्रह किये जाने पर सिद्धसेन ने महादेव के सच्चे स्वरूप की स्तुति प्रारम्भ की। कतिपय कथाग्रन्थों में बताया गया है कि सिद्धसेन, स्तुति के कुछ ही श्लोक का उच्चारण कर पाये थे कि अद्‌भुत तेज के साथ वहाँ भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रगट हो गई।

राजा विक्रमादित्य अचिन्त्य आत्म शक्ति के अनेक चमत्कारों को देखकर सिद्धसेन के परम भक्त बन गये।

मीमांसा—आचार्य एक ओर लिखते हैं कि अचिन्त्य आत्म-शक्ति के चमत्कार ऐसे होते हैं, किन्तु प्रतिमा द्वेष के कारण दूसरी ओर वे लिखते हैं कि आधुनिक चिंतक इस पर विश्वास नहीं करते हैं। लगता है मन के अनिश्चित एवं चल विचलित परिणाम के कारण ही ऐसी परस्पर विरोध पूर्ण बातें आचार्य ने लिखी हैं। सच ही कहा है— "विवेक भ्रष्ट का पतन अनेकशः होता है।"

पापभीरु एक सामान्य जन भूल से भी झूठ बोलने से कांपता है, मगर आचार्य होकर भी जानबूझ कर झूठ बोले तो उनकी दीक्षा निरर्थक है।

—आगमेतर सबसे प्राचीन ग्रन्थ उपदेशमाला [श्लोक—५०८]

[प्रकरण–३३]

जैन धर्म में मूर्तिपूजा और प्राचीन शिलालेख

जिनागम और जिनप्रतिमा-मंदिर ये दो ही श्रेष्ठ साधन जैनधर्म की संस्कृति के प्रचार प्रसार के आधार रहे हैं। इन दोनों श्रेष्ठ मार्गों से ही पूर्वाचार्यों ने जैनधर्म की संस्कृति को आजतक टिकाया है। भूमि की खुदाई द्वारा मिले प्राचीन ध्वंसावशेष मूर्तियां और शिलालेखों ने जैनागम और आगमेतर प्राचीन जैन शास्त्रों कथित जिन मन्दिर और प्रतिमापूजा के सत्य तथ्य को चार चांद लगा दिये हैं। निष्पक्ष इतिहासकार और पुरातत्त्वविद् इन ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्णतः सहमत हैं कि जिनमूर्तियां, पादुका एवं स्तूपादि भगवान महावीर से भी बहुत पहिले पूजे जाते थे।

मथुरा के कंकाली टीले में से मिले प्राचीन ध्वंसावशेष से यह तथ्य भली भांति सिद्ध हो चुका है कि महान सम्राट अशोक (अपरनाम सम्प्रति), बिन्दुसार और चन्द्रगुप्त आदि राजा भी जिनप्रतिमा आदि में विश्वास करते थे। खंड २, पृ० ४५१ पर आचार्य लिखते हैं कि—

***** ....जिन शिलालेखों को आजतक अशोक के शिलालेखों के नाम से बौद्धधर्म से सम्बन्धित शिलालेख समझा जाता रहा था,**

उनमें कतिपय शिलालेख सम्प्रति, बिन्दुसार और चन्द्रगुप्त के एवं जैनधर्म से सम्बन्धित भी हैं। ✡✡✡

मीमांसा—ध्वंसावशेष के रूप में मिले प्राचीन शिलालेखों, जिनमूर्तियां और जिनमूर्ति पर उट्टंकित शिलालेखों से इस तथ्य की भलीभांति पुष्टि होती है कि पूर्वाचार्यों ने इन राजा महाराजाओं को प्रतिबोध करके जैन संस्कृति के प्रचार प्रसार हेतु आगम कथित मार्ग से जिनमन्दिरों का निर्माण करवाया था एवं उनमें तीर्थंकर परमात्मा की मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवायी थी तथा इनके द्वारा जैनधर्म को लोकहृदय में आजतक सुरक्षित रखा है।

जिनप्रतिमा और जिनमन्दिर के विरोध के कारण ही ध्वंसावशेष के विषय में आचार्य अपनी कलम चोरी-चोरी चला रहे हैं, उनकी सावधानी का यही कारण है कि कहीं उनके हाथों प्रतिमा की सत्यता जाहिर न होने पाये। किन्तु एक सच्चा इतिहासकार सच्चे तथ्यों पर कभी भी अभिनिवेश या दुराग्रह नहीं रख सकता। जैनागम तथा आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य एवं ऐतिहासिक शिलालेखों आदि के तथ्य होते हुए भी मूर्तिपूजा जैसे विषय को विवादास्पद बनाकर इनके ऐतिहासिक तथ्यों से इन्कार करना सूर्य के प्रकाश को हाथ से रोकने सदृश बालिश प्रयास मात्र है और अपने अनुगामियों को गलत और अप्रमाणिक मार्ग पर भटकाये रखने का घृणास्पद कृत्य भी है।

जिनप्रतिमा और जिनमन्दिर के विषय में पूर्वग्रह ग्रसित मानस के कारण खंड २, पृ० ४५१ पर आचार्य कैसी अस्पष्ट, गोल-मोल एवं हास्यास्पद बात लिखते हैं कि—

✡✡✡ सिंह का सम्बन्ध बुद्ध के साथ उतना संगत नहीं बैठता जितना कि भगवान् महावीर के साथ। भगवान महावीर का चिन्ह (लांछन) सिंह था और केवलज्ञान की उत्पत्ति के पश्चात् भगवान महावीर के साथ-साथ

सिंह का चिन्ह भी चतुर्मुखी दृष्टिगोचर होने लगा था। सिंहचतुष्टय पर धर्म-चक्र इस बात का प्रतीक है कि जिस समय तीर्थंकर विहार करते हैं, उस समय धर्मचक्र नभमण्डल में उनके आगे आगे चलता है। इस प्रकार के अनेक गहन तथ्य हैं, जिनके सम्बन्ध में गहन शोध की आवश्यकता है।

मीमांसा—आचार्य हस्तीमलजी ने उक्त बात बौद्धधर्मचक्र और चतुर्मुख सिंहाकृति वाले सारनाथ का स्तम्भ के विषय में कही है। किन्तु समवसरण में भगवान का चतुर्मुखी दिखना और तीनों ओर देवों द्वारा भगवान के शरीर प्रमाण-प्रतिकृति यानी प्रतिमा की स्थापना करना आदि विषय में स्वमान्यता विरोध के कारण विशद स्पष्टीकरण वे नहीं करपाये हैं जो खेद का विषय है। "इस प्रकार के अनेक गहन तथ्य हैं, जिनके सम्बन्ध में गहन शोध की आवश्यकता है" आचार्य का ऐसा लिखना अनुचित है क्योंकि घोर परिश्रमी (!) और वस्तु के अन्तःस्तल तक पहुँचने की प्रज्ञाधारक (!) आचार्य स्वयं इस प्रकार के तथ्यों पर गहन शोध क्यों नहीं करते हैं ?

आगमसूत्रों एवं आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य में भी जिनमन्दिर, मूर्तिपूजा का वर्णन आता है। पुरातन अवशेष विशेष भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। आबू, राणकपुर, गिरनारजी, शत्रुंजय, कदम्बगिरि, सम्मेतशिखरजी, पावापुरी, राजगिरि, केसरियाजी, तारंगाजी आदि तीर्थों पर पूर्वाचार्यों के आगमानुसारी कथन पर ही जिनेश्वर भगवान के भक्तों ने विशाल जिन मंदिर बनवाये हैं और मंदिर में जिन मूर्तियों की उन आचार्यों द्वारा प्रतिष्ठा करवा कर वे जैन श्रावकों जिन मूर्ति से मूर्तिमान अरिहंत का वंदन-पूजन-सत्कार-सम्मान कर कृतार्थ हो रहे हैं। एकान्तवादी दृष्टि के कारण ही खंड १, पृ० ४२३ पर आचार्य विशाल जिन मन्दिरों को मात्र कलाकृति के ही प्रतीक कहते हैं, जो अन्यायपूर्ण है। यथा—

☼☼☼ भगवान पार्श्वनाथ की भक्ति से ओत-प्रोत अनेक महात्माओं एवं विद्वानों द्वारा रचित प्रभु पार्श्वनाथ की महिमा से पूर्ण कई महाकाव्य, काव्य, चरित्र, अगणित स्तोत्र और देश के विभिन्न भागों में "भव्य कलाकृतियों के प्रतीक" विशाल मंदिरों का बाहुल्य, ये सब इस बात के पुष्ट प्रमाण हैं कि भगवान पार्श्वनाथ के प्रति धर्मनिष्ठ मानव समाज पीढ़ियों से कृतज्ञ और श्रद्धावनत है। ☼☼☼

मीमांसा—विशाल जिन मन्दिरों को मात्र भव्यकला कृतियों के प्रतीक कहना आचार्य की बहुत गहरी गलती है। ये मंदिर भगवान को प्रतिदिन वंदन-पूजन-सत्कार-सन्मान करके उनके प्रति कृतज्ञता एवं श्रद्धा का भाव प्रगट करने हेतु हैं। मन्दिरों को "भव्य कलाकृतियों के प्रतीक" कहने की अपनी धुन में आचार्य यह भूल गये कि फिर तो पूर्वाचार्यों द्वारा रचित स्तोत्र, भजन, स्तवन, चरित्रग्रन्थों आदि भव्य रचनाओं को भी वाणीविलास या काव्यविनोद हेतु ही पूर्वाचार्यों ने रचा है, ऐसा अनुचित मानने की भी आपत्ति आजायगी। जिनमन्दिर और स्तोत्र आदि साहित्य तीर्थंकर परमात्मा की भक्ति, उपकारी के उपकार के बदले में कृतज्ञता व्यक्त करने हेतु और श्रद्धा तथा ज्ञान प्राप्ति हेतु एवं जिनेश्वर देव को नित्य वंदन, पूजन, सत्कार सम्मान हेतु है, यह बात आचार्य को भूलना नहीं चाहिए।

प्रभु पार्श्वनाथ की भक्ति के विषय में आचार्य खंड १, पृ० ५२३ पर लिखते हैं कि—

☼☼☼ जैन साहित्य के अन्तर्गत स्तुति-स्तोत्र और मंत्रपदों से भी ज्ञात होता है कि वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थंकरों में से भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति के रूप में जितने मंत्र या स्तोत्र उपलब्ध हैं, उतने अन्य के नहीं हैं। ☼☼☼

मीमांसा—पार्श्वनाथ भगवान के जितने स्तोत्र हैं, उतने ही जिनमन्दिर हैं, यह किसी को भूलना नहीं चाहिए। श्री पार्श्वनाथ

भगवान को कल्पसूत्र आदि शास्त्रों में पुरुषादानीय कहा है। प्राचीन स्तोत्रों में आपके १०८ नाम प्रसिद्ध हैं। इन नामों से सम्बन्धित विशाल तीर्थ आज भी मौजूद हैं और भविक लोग उन तीर्थों की यात्रा करके पावन होते हैं। चिंतामणि पार्श्वनाथजी, अंतरिक्ष पार्श्वनाथजी, अवंति पार्श्वनाथजी, शंखेश्वर पार्श्वनाथजी, जिरावला पार्श्वनाथजी वरकाणा पार्श्वनाथजी, नवखंडा पार्श्वनाथजी, नाकोडा पार्श्वनाथजी, सम्मेतशिखर पर श्री शामलिया पार्श्वनाथजी, पंचासरा पार्श्वनाथजी आदि अनेक नामों से भगवान श्री पार्श्वनाथजी अनेक तीर्थों में पूजे जाते हैं। इन सब तथ्यों को इतिहास लेखक आचार्य जानें और मानें तथा सत्य को आत्मसात् करें, यही हमारी शुभेच्छा है।

मूर्तिपूजा को मैं बहुत प्राचीन और परमोपयोगी मानता हूं। जैनधर्म को अब तक इस रूप में टिकाये रखने का प्रमुख श्रेय मैं मूर्तिपूजा को देता हूं।

—श्री अगरचन्दजी नाहटा,
इतिहासवेत्ता एवं पुरातत्त्वविद्

[प्रकरण–३४]

स्थानकपंथी समाज में इतिहास की कमी

आगम शास्त्र, आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य भाष्य, वृत्ति, चूर्णि, टीकादि रूप आगमिक सामग्री एवं जमीन में से निकले प्राचीन अवशेष विशेष रूप ऐतिहासिक तथ्यों से यह सर्वथा सत्य सिद्ध हो गया है कि जिन मूर्तियां, चरण पादुका एवं स्तूपादि भगवान महावीर से भी बहुत पहले पूजे जाते थे। जिन मंदिर एवं जिन प्रतिमा विषयक इसी प्रकार प्राचीन प्रामाणिक आधार होते हुए भी आचार्य हस्तीमलजी ने कैसा कल्पित, गलत एवं अप्रमाणिक इतिहास लिखा है इसकी मीमांसा पिछले ३३ प्रकरणों में हम कर आये हैं।

एक माने हुए जैनाचार्य ने पंथमोह में फँसकर अप्रमाणिकता और झूठ का सहारा लेकर जैनधर्म के इतिहास को कलंकित किया है और आचार्य पद की गरिमा को कालिमा लगायी है। फिर भी उल्टा चोर कोटवाल को डांटे इस भांति खंड १ (पुरानी आवृत्ति) अपनी बात पृ० २५ पर आचार्य लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ जैन इतिहास के इस प्रकार के प्रामाणिक आधार होने पर भी आधुनिक विद्वान् इसको बिना देखे जैनधर्म और तीर्थंकरों के विषय में भ्रान्तिपूर्ण लेख लिख डालते हैं, यह आश्चर्य एवं खेद की बात है। इतिहासज्ञ

को प्रामाणिक ग्रन्थों का अध्ययन कर जिस धर्म या सम्प्रदाय के विषय में लिखना हो प्रामाणिकता से लिखना चाहिए। साम्प्रदायिक अभिनिवेश या बिना पूरे अध्ययन मनन के सुनी सुनाई बात पर लिख डालना उचित नहीं।

मीमांसा—यही बात हमें आचार्य के लिये ही कहनी है कि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों जैन सम्प्रदाय मूर्तिपूजा में विश्वास करते हैं, फिर मूर्तिपूजा के विषय में आचार्य ने विरुद्ध क्यों लिखा? आगम-ग्रन्थों, आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य एवं ऐतिहासिक शिलालेखों आदि की प्रामाणिक सामग्री होते हुए भी विपरीत मार्ग पर चलना और अपने अनुयायियों को भी विपरीत मार्ग पर भटकाये रखना क्या उचित है? अगर आचार्य को जैनधर्म के विषय में इतिहास लिखना था तो दोनों दिगम्बर एवं श्वेताम्बर जैन परम्परा के प्राचीन साहित्य और ऐतिहासिक सामग्री के सहारे से मूर्तिपूजा विषयक तथ्य को सत्य लिखना था। इससे विपरीत अगर आचार्य को कल्पना पूर्वक मनगढंत इतिहास का एक समिति द्वारा निर्माण करवाना ही था तो जैन समाज को ऐसे कल्पित इतिहास की आवश्यकता ही क्या थी?

अगर आचार्य को स्थानकपंथी मान्यता पूर्ण ही इतिहास लिखना था और जिनमन्दिर आदि विषयों को अंधेरे में ही रखना था तो अच्छा यह था कि आप "स्थानकपंथी जैन इतिहास" ऐसा कुछ नाम देकर श्रीमान् लोंकाशाह से ही उसका प्रारम्भ करते और किसी भी इतिहास समिति द्वारा चाहे जैसा लिखवाते–छपवाते इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं होती और "स्थानकपंथी जैन इतिहास" ऐसा कुछ नाम पूर्वक उनके आद्य पूर्वपुरुष वृद्ध जैन गृहस्थी लोंकाशाह से इतिहास प्रारम्भ करने पर आचार्य को किसी भी झूठ का सहारा लेने की नौबत न आती एवं कम से कम जैन इतिहास को कलंकित करने के पाप से भी आप बच जाते। स्थानकपंथी मान्यता के अनुकूल इतिहास लिखना

और उसका नाम "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" रखना यह एक *मनीषी आचार्य का भ्रम फैलाने का अप्रमाणिक कृत्य ही है।* खंड १, पृ० ३४ पर सम्पादकीय नोंध में गजसिंहजी राठौड़ लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ **जैन समाज, खासकर श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज में जैनधर्म के प्रामाणिक इतिहास की कमी चिरकाल से खटक रही थी।** ☼ ☼ ☼

मीमांसा—"जैन समाज" में इतिहास की कमी है ही नहीं। वसुदेव हिण्डी, पउमचरियं, तिलोय पण्णत्ति, चउवन महापुरिस चरियं, त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र, हरिवंश पुराण आदि अनेक प्रामाणिक प्राचीन इतिहास एवं आगम तथा आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य, चरित्र ग्रन्थों आदि में प्राचीन जैनाचार्यों द्वारा कथित जैन समाज का प्रमाणिक इतिहास सुव्यवस्थित रीत से सुरक्षित है और सम्मेतशिखर, पावापुरी, गिरनार, शत्रुंजय, राणकपुर, आबू, केसरियाजी, कुम्भारियाजी, तारंगाजी आदि हजारों तीर्थों एवं लगभग ८० हजार से भी अधिक जिन मन्दिरों के रूप में जैन समाज का इतिहास स्वयं व्यवस्थित है। अतः जैन समाज में इतिहास की कमी खटकने की सम्पादक श्री गजसिंहजी की कथित बात सर्वथा असत्य ही है। आचार्य स्वयं खंड-१ [पुरानी आवृत्ति] पृ० ६ पर अपनी बात में लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ **उपरोक्त पर्यालोचन के बाद यह कहना किंचित्मात्र भी अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि हमारा जैन इतिहास बहुत गहरी सुदृढ़ नींव पर खड़ा है। यह इधर-उधर की किंवदन्ती या कल्पना के आधार से नहीं पर प्रामाणिक पूर्वाचार्यों की अविरल परम्परा से प्राप्त है। अतः इसकी विश्वसनीयता में लेशमात्र भी शंका की गुंजाइश नहीं रहती।** ☼ ☼ ☼

मीमांसा—आचार्य के उक्त कथन से भी "जैन समाज में इतिहास की कमी" की गजसिंहजी द्वारा लिखित बात असत्य ही सिद्ध

होती है। प्रामाणिक पूर्वाचार्यों कथित सत्य इतिहास मौजूद होते हुए भी कल्पित एवं किंवदन्ती स्वरूप, असत्य एवं स्थानकपंथी मान्यता से पूर्ण, नामधारी एक समिति द्वारा प्रकाशित किया गया और नामधारी एक आचार्य द्वारा रचा गया "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" नामक पुस्तक को कौन सज्जन सत्य मान सकता है ? अतः जिन मन्दिर एवं जिनमूर्तिपूजा में विश्वास करने वाले सुज्ञों से मेरा अनुरोध है कि जितनी संभव हो सके उतनी ताकत से इतिहास लेखन की ऐसी कुप्रवृत्तियों की आलोचना करनी चाहिए।

रही बात स्थानकपंथी समाज की सो वे अपने इतिहास का नाम "स्थानकपंथी समाज का मौलिक (!) इतिहास" रखकर, फिर चाहे जैसा मनमाना अपना इतिहास रचें, तो हमें कोई विवाद नहीं है।

भरतचक्रवर्ती ने अष्टापद पर जिनमंदिर बनवाये इस विषय में कल्पित पौराणिक किंवदन्ती को सामने कर श्री सिद्धसेनसूरिजी की घटना को प्रतिमा के कारण अप्रामाणिक लिखकर, श्री गौतमस्वामी का अष्टापदगिरि पर जाने का सत्य छिपाकर, दशपूर्वधर श्री वज्रस्वामी का विद्याबल से पुष्प लाने के सत्य को विपरीत कर आचार्य ने सत्य से वैमनस्य रखा है और ऐसी तो अनेक बातें हैं, जिनको आचार्य ने विपरीत लिखी है, फिर भी वे खंड-१, पृ० ३१ पर लिखते हैं कि—

कहीं भी साम्प्रदायिक अभिनिवेश वश कोई अप्रमाणिक बात नहीं आने पावे, इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है।

मीमांसा—स्थानकपंथी कभी भी जैनधर्म विषयक इतिहास सत्य लिख ही नहीं सकते हैं। साम्प्रदायिक व्यमोह के कारण आचार्य ने अपने इतिहास से जिनप्रतिमा, जिनमन्दिर आदि विषयों में अनेक अप्रामाणिक बातें लिखी हैं, अतः उनका उक्त कथन सर्वथा असंगत ही है।

मुख्य संपादक श्री गजसिंहजी राठौड़ को हमारा इतना ही कहना है कि इतिहास लेखन में आगम शास्त्र, आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य एवं प्राचीन जिनमंदिर-जिनमूर्तियां एवं शिलालेख आदि के विद्यमान होते हुए, अगर आप सत्य इतिहास लिखते-लिखवाते और सही मार्गदर्शन करते तो आपकी विद्वता से विज्ञजनों को अवश्य संतोष और आनन्द होता।

आचार्य हस्तीमलजी से हमें आशा ही नहीं, विश्वास भी है कि वे आचार्य पद की गरिमा समझते हुए आगे प्रामाणिक एवं सत्य इतिहास लिखने का कष्ट करेंगे।

यही शुभेच्छा है कि आगे के इतिहास में आचार्य हस्तीमलजी पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज, पूज्य हरिभद्रसूरिजी, पूज्य अभयदेव सूरिजी, पूज्य हीरसूरीश्वरजी, पूज्य यशोविजयजी आदि अनेक महान पुरुषों के विषय में जो भी लिखें वह सत्य तथ्य पर आधारित होना चाहिए एवं कुमारपाल महाराजा, वस्तुपाल-तेजपाल, उदायन मंत्री, आम्रभट्ट-बाहड़भट्ट, धरणशाह, पेथड़शाह, जगडुशाह, विमलशाह, करमाशाह आदि महान जैन श्रावकों के विषय में भी लिखें तो सत्य लिखें। साथ ही साथ शत्रुंजय, सम्मेतशिखरजी, पावापुरीजी, गिरनारजी, वैभारगिरि, राणकपुर, आबू, तारंगाजी, कुम्भारियाजी, केसरियाजी, नाकोड़ाजी, शंखेश्वरजी आदि तीर्थों के विषय में लिखें तो सही सही सत्य लिखेंगे और मिली हुई एवं बची हुई समयादि शक्तियों का सदुपयोग कर जैन शासन की गरिमा को उन्नत करेंगे।

जैन समाज में विद्यमान सर्व प्रबुद्ध जनों से विनती है कि प्रकाश से अंधकार में ले जाने वाली गलत इतिहास आदि साहित्य लिखने वालों की बालिश कुचेष्टा से सावधान एवं सतर्क रहें।

मेरे द्वारा जिनाज्ञा के विरुद्ध यदि कुछ भी लिखा गया हो तो मिच्छामि दुक्कडम् देता हूँ।

सुज्ञैः मयि उपकृत्य शोध्यम्।

जैनं शासनम् जयतु।

[प्रकरण–३५]

परिशिष्ट

मूर्तिपूजा में शास्त्रों की सम्मति

प्रथम प्रमाण

श्री ज्ञाताधर्म कथा नामक आगमसूत्र के छट्ठे अध्ययन में द्रौपदी ने जिन पूजा की थी, ऐसा स्पष्ट कथन है। जिससे श्री नेमिनाथ भगवान के काल में भी जिनमूर्ति पूजा थी, यह बात सिद्ध होती है। श्री ज्ञाताधर्म कथा सूत्र कथित पाठ इस प्रकार है—

✲ ✲ ✲ तएणं सा दोवई रायवर कन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता मज्जणघरमणुप्पविसइ, अणुपविसइत्ता ण्हाया कयबलि-कम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धपावेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवर परिहिया मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता जिणघरं अणुपविसइ, अणुपविसइत्ता आलोए जिणपडिमाणं पणामं करेइ, पणामं करेइत्ता लोमहत्थयं परामुसइ, एवं जहा सूरियाभो जिणपडिमाओ अच्चेइ तहेव भाणियव्वं जाव धूवं डहइ, धूवं डहइत्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचेइत्ता दाहिणं जाणुं धरणीतलंसि णिवेसेइ, णिवेसित्ता तिखुत्तो मुद्धाण धराणीतलंसि नमेइ, नमयित्ता इंसि पच्चुणमइ करयल जाव कट्टु एवं वयासि—

नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं वंदइ नमंसइ जिणघराओ पडिणिक्खमइ। [सूत्र ११–९] ✲ ✲ ✲

अर्थ—इसके बाद वह द्रौपदी राजकन्या स्नानघर में आई, स्नान घर में आकर स्नान किया, बलिकर्म-कौतुक मंगल प्रायश्चित्त करके शुद्ध प्रवेश योग्य श्रेष्ठ वस्त्रों को पहिनकर स्नान घर में से बाहर निकली और जहाँ जिन मन्दिर है वहाँ आई, आकर के जिन मन्दिर में प्रवेश किया, प्रवेश करके जिनप्रतिमा के दर्शन किये, प्रणाम किया, प्रणाम करके मोरपींछ (मोरपंख) से जिस प्रकार सूर्याभदेव जिन प्रतिमा को पूजता है, उसी प्रकार (विस्तार से) पूजा-अर्चना की, यावत् धूप करके बायां घुटना खड़ा करके दायां घुटना को जमीन पर स्थापन करती है, स्थापन करके तीन बार मस्तक झुकाकर नमस्कार करती है, नमस्कार करके सिर झुकाकर दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोलती है—

नमस्कार हो अरिहंत भगवंतों को यावत् जो (सिद्धिगति को) प्राप्त हुए हैं उनको वंदन करती है, नमस्कार करती है, वंदन और नमस्कार करके जिनमन्दिर में से बाहर निकलती है।

[नोंध—यह आगमिक शैली है कि आगम शास्त्रों [भगवान की वाणी] को ग्रंथारूढ़ करते वक्त ग्रन्थ-विस्तार के भय से ग्रन्थकर्ता महर्षियों ने समान वर्णन वाले प्रसंगों को जहाँ विस्तार से वर्णन मिलता हो (लिखा हो) उसी आगम सूत्र का निर्देश (सूचन) कर दिया है कि—' वहाँ से इस विषयक वर्णन देख लेना।"

जैसे श्री ज्ञाताधर्म कथा नामक अंगसूत्र में श्री मल्लिनाथ स्वामी का जन्म महोत्सव विषयक वर्णन का निर्देश शास्त्रकार महर्षि पूज्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण महाराज ने "जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र" में से देखलेने का कह दिया है—

"जहा जम्बूद्दीव पण्णत्तिए सव्वं जम्मणं भाणियव्वं"

तथा ज्ञातासूत्र में ही श्री मल्लिनाथ स्वामी के दीक्षा विषयक वर्णन को जमालि के अधिकार में से जान लेना ऐसा सूत्रकार महर्षि श्री देवर्द्धिगणि महाराज ने कहा है। यथा—

☼ ☼ ☼ एवं विणिग्गमो जहा जमालीस्स। ☼ ☼ ☼

ठीक उसी प्रकार राजकुमारी द्रौपदी ने विस्तार से जिन पूजा की थी, इस विषय में शास्त्रकार महर्षि "रायपसेणी" नामक उपांग-सूत्र का निर्देश करके कहते हैं कि— "द्रौपदी ने विस्तार से जिन पूजा की थी वह "रायपसेणी सूत्र" में से देख लेना।"

श्री ज्ञाताधर्म कथा नामक छट्ठा अंगसूत्र के कर्ता १ पूर्वधर महर्षि पूज्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण भी द्रौपदी विषयक जिनपूजा के अधिकार को सूर्याभदेवका अधिकार जिस "रायप्रश्नीय" नामक उपांग सूत्र में है, उसमें से देखलेने का निर्देश [सूचन] करते हैं यह इसबात का सूचक है कि १ पूर्वधर महर्षि श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण महाराज भी अंगसूत्र के समान ही उपांग सूत्र का भी महिमा—महत्व करते हैं। यानी उपांगसूत्र भी अंगसूत्र जितना ही महत्वपूर्ण और प्रामाणिक है।]

द्वितीय प्रमाण

श्री रायपसेणीय नामक उपांग सूत्र में सूर्याभदेव ने जिन-मूर्तिपूजा की थी, इस विषयक पाठ—

☼ ☼ ☼ तएणं से सूरियाभे देवे चउहिं सामाणिय सहस्सीहिं जाव अन्नेहिं य बहुहिं य सूरियाभ जाव देवेहिं य देवीहिं सद्धि संपरिवुडे सव्वढ्ढिए जाव णा (व) निय-रवेणं जेणेव सिद्धायतणे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सिद्धायतणं पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव देवच्छंदए,

जेणेव जिणपडिमाओ तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता जिणपडिमाणं आलोए पणामं करेंति, करित्ता लोमहत्थएणं गिण्हंति, गिण्हित्ता जिणपडिमाणं लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता जिणपडिमाओ सुरभिणा गंधोदएण ण्हाणेइ, ण्हाणित्ता सुरभिगंधकासाइएणं गायाइं लूहेति, लूहित्ता जिण-पडिमाणं सरस गोसीस चंदणेणं गायाइं अणुलिंपइ, अणुलिंपइत्ता अहयाइं देवदूस जुयलाइं नियंसेइ, नियंसित्ता पुप्फारुहणं मल्लारुहणं गंधारुहणं चुण्णरुहणं वन्नारुहणं वत्थारुहणं आभरणारुहणं करेइ, करित्ता आसतोसत्त विउलवट्टवग्घारिय मल्लदाम-कलावं करेइ, मल्लदामकलावं करित्ता कयग्गह गहिय करयल पब्भट्ठ विप्पमुक्केणं दसद्धवन्नेणं कुसुमेणं मुक्क पुप्फ-पुंजोवयार कलियं करेंति, करित्ता जिणपडिमाणं पुरतो अच्छेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अच्छरसा तंदुलएहिं अट्ठट्ठ मंगले आलिहइ, तं जहा-सोत्थिय जाव दप्पणं। तयाणंतरं च णं चंदप्पभरयण वइर वेरुलिय विमलदंड कंचण मणिरयण भत्तिचित्तं कालागुरु-पवर कुंदरुक्क तुरुक्क धूव मघमघंत गंधुत्तमाणुविद्धं च धूववट्टिं विणिम्मुयत्तावेरुलियमयं कडुच्छुय पग्गहिय-पयत्तेणं "धूवं दाउणं जिणवराणं" अट्ठसय विसुद्ध गंथजुत्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुण-रुत्तेहिं महावित्तेहिं संथुणइ, संथुणईत्ता सत्तट्ठ-पयाइं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कईत्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचईत्ता दाहिणं जाणुं धरणीतलंसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणीतलंसि निवाडेइ, निवाडित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमईत्ता करयल परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासि—नमोत्थुणं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव देवच्छंदए जेणेव सिद्धाय-तणस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ।

[रायप्पसेणी सूत्तं]

अर्थ—उसके बाद सूर्याभदेव चार हजार सामानिक देवों के साथ यावत् अन्य भी अनेक सूर्याभविमान में निवास करने वाले देव तथा देवियों के साथ सपरिवार सर्वऋद्धि से सहित (युक्त) यावत् वाजित्रनाद के साथ जहाँ सिद्धायतन (जिन मंदिर) है वहाँ आता है, आकर पूर्वद्वार से सिद्धायतन में प्रवेश करता है, प्रवेश करके जहाँ देव-

छंदक है और जहाँ जिनप्रतिमाएँ हैं वहां जाता है, जाकर जिनप्रतिमा का दर्शन करता है, दर्शन करके प्रणाम करता है, प्रणाम करके मोरपींछ (मोरपंख) लेता है, लेकर प्रतिमाओं का मोरपींछ से प्रमार्जन करता है। प्रमार्जन करने के बाद जिनप्रतिमाओं को सुगन्धित गंधोदक से स्नान कराता है, अभिषेक करके सुरभिगन्ध युक्त काषायिक वस्त्रों से (अंगलुहना से) भगवान के गात्रों को स्वच्छ करता (पोंछता) है, स्वच्छ करके सरस गोशीर्ष चंदन से गात्रों का विलेपन करता है, विलेपन करके अखंडित देवदूष्य (वस्त्रयुगल) रखता है, रखकर पुष्प चढ़ाता है, माला अर्पण करता है, गंध और सुगंधी अर्पण करता है, तथा वर्णक अर्पण करता है, वस्त्र अर्पण करता है, आभूषण चढ़ाता है, आभूषण चढाकर चारों ओर लम्बी पुष्पमालाएँ लटकाता है, पुष्पमाला लटकाकर खुले हुए पंचवर्ण पुष्प हाथमें लेकर चारों ओर बिखेरता है, इस प्रकार पुष्पों द्वारा पूजोपचार (पूजा द्वारा भक्ति से) पूर्वक सिद्धायतन (जिन मन्दिर) को सजाता है, सजाने के बाद में जिनप्रतिमाके सामने अप्सराएँ स्वच्छ चिकना रजतमय अक्षतों से अष्ट मंगल का आलेखन करती हैं, जिनके नाम स्वस्तिक यावत् दर्पण हैं। उसके बाद चन्द्रप्रभ रत्न, हीरा और वैडूर्यरत्नों युक्त जिसका दंड उज्ज्वल है एवं सुवर्ण और मणिरत्नों की रचना से मनोहर, कृष्णागरु श्रेष्ठ कुन्दुरूप तुरुष्क धूप से मघमघायमान उत्तम गंध से युक्त धूपबत्ती जैसी सुगंधिको फैलानेवाला वैडूर्यरत्नमय धूपधाना (धूपदानी) को लेकर प्रयत्न पूर्वक (सावधानी से) जिनवरों को धूप करता है. बाद में १०८ विशुद्ध रचनावाला अर्थ-युक्त अपुनरुक्त (विविध) महान श्लोकों से स्तुति करता है। स्तुति करके सात-आठ कदम पीछे हटता है, पीछे हटकर बायाँ घुटना ऊँचा करता है और दाहिनां घुटना जमीन पर टिकाकर जमीन पर तीन बार सिर झुकाता है, मस्तक को जमीन पर लगाकर थोड़ा ऊँचा उठाता है, ऊँचा उठाकर दोनों हाथ जोड़कर अंजलीबद्ध करसंपुट करके इस प्रकार स्तुति करता है—

"नमस्कार हो अरिहंत भगवन्तों को यावत् जो सिद्धिगति को प्राप्त किये हुए हैं उनको"—इत्यादि वंदन नमस्कार करता है, वंदन-नमस्कार करके जहाँ देवछंदक है, जहाँ सिद्धायतन का मध्यभाग है वहाँ जाता है।

[श्री राजप्रश्नीय सूत्र]

—तृतीय प्रमाण—

श्री अंगचूलिया नामक कालिक सूत्र [जिसका उल्लेख श्री नंदीसूत्र कथित ७३ सूत्र में है] में कहा है कि सर्वसावद्य त्याग रूप दीक्षा जिनमन्दिर में देनी चाहिए। यथा—

तिहि नक्खत्त मुहुत्त रविजोगाइय पसन्न दिवसे अप्पा वोसिरामि। "जिणभवणाइ" पहाणखित्ते गुरुं वंदित्ता भणइ इच्छकारि तुम्हे अम्हं पंच महाव्वयाइं राइभोयण वेरमणं छट्ठाइं आरोवावणिया।

[श्री अंगचूलिया सुत्तं]

अर्थ—तिथि, नक्षत्र, मुहूर्त्त, रवियोग आदि योग युक्त प्रशस्त शुभदिन को (मुमुक्षु) अपनी आत्मा को पाप से वोसिरावे (त्यागे), सो जिनभवन (जिनमन्दिर) आदि प्रधान (श्रेष्ठ) क्षेत्र में गुरु को वंदना करके कहे— 'प्रसाद करके आप मुझको पंच महाव्रत और छट्ठा रात्रिभोजन विरमणव्रत आरोपण करो (देवो)।

चतुर्थ प्रमाण

श्री भगवतीसूत्र में निर्युक्ति, टीका आदि को मानने का निर्देश किया है। यथा—

सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्ति मिस्सओ भणिओ,
तइओय निरविसेसो। एस विहि होई अणुओगो।

—श्री भगवती सूत्र, २५ वाँ शतक, तीसरा उद्देशा

अर्थ—प्रथम (सामान्य से) सूत्र और अर्थ का कथन करना, दूसरा निर्युक्ति के साथ अर्थ देना (अर्थ करना) और तीसरी बार निर्विशेष अर्थात् सम्पूर्ण (पूरा पूरा) अर्थ देना (करना)।

[इस आगम पाठ में तीसरे प्रकार की व्याख्या में भाष्य, चूर्णि, टीका आदि के सहारे से सूत्रार्थ करना ऐसा साफ लिखा हुआ है।]

पञ्चम प्रमाण

श्री महाकल्पसूत्र नामक उत्कालिक सूत्र में [जिस सूत्र का नाम कथन श्री नन्दीसूत्र में भी है] लिखा है कि—साधु और श्रावक जिन मन्दिर में नित्य जावें। अगर नहीं जावें तो प्रायच्छित लगता है, ऐसा श्री महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी गणधर महाराज के प्रश्न के उत्तर में कहा है। यथा—

✲✲✲ से भयवं ! तहारुवं समणं वा माहणं वा चेइयघरे गच्छेज्जा ? हंता गोयमा ! दिणे दिणे गच्छेज्जा। से भयवं ! जत्थ दिणे ण गच्छेज्जा तओ किं पायच्छित्तं हवेज्जा ? गोयमा ! पमायं पडुच्च तहारुवं समणं वा माहणं वा जो जिणघरं न गच्छेज्जा तओ छट्ठं अहवा दुवालसमं पायच्छित्तं हवेज्जा। से भयवं ! समणोवासगस्स पोसहसालाए पोसहिए पोसह बंभयारि किं जिणघरं गच्छेज्जा ? हंता, गोयमा ! गच्छेज्जा। से भयवं ! केणट्ठेणं गच्छेज्जा ? गोयमा ! णाण दंसण चरणट्ठाए गच्छेज्जा। जे कोई पोसहसालाए पोसह बंभयारी जओ जिघहरे न गच्छेज्जा तओ किं पायच्छित्तं हवेज्जा ? गोयमा ! जहा साहू तहा भाणियव्वं, छट्ठं अहवा दुवालसमं पायच्छित्तं हवेज्जा।

[श्री महाकल्पसूत्र शास्त्र] ✲✲✲

अर्थ – गौतम स्वामी का प्रश्न:—(साधु और श्रावक नित्य जिनमन्दिर में जावें) हे भगवंत् ! अगर नहीं जावें तो क्या प्रायच्छित (दण्ड) लगता है ?

महावीर स्वामी—हे गौतम ! यदि प्रमाद (आलस्य) के कारण वे जिन मंदिर न जावें तो दो व्रत या तीन व्रत (उपवास) का प्रायच्छित लगता है ।

गौतम स्वामी—हे भगवंत् ! पौषध ब्रह्मचारी श्रावक पौषध में रहा हुआ क्या जिन मन्दिर जावे ?

महावीर स्वामी— हाँ गौतम ! जावे ।

गौतम स्वामी—भगवन् ! मंदिर में वह किसलिये जावे ?

महावीर स्वामी— हे गौतम ! ज्ञान-दर्शन-चारित्र निमित्त जावे ।

गौतम स्वामी—पौषधशाला में रहा हुआ पौषध-ब्रह्मचारी श्रावक जिनमन्दिर में नहीं जावे, तो प्रायच्छित क्या होता है ?

महावीर स्वामी—हे गौतम ! साधु को जितना प्रायच्छित होता है उतना प्रायच्छित लगता है यानी छट्ठ (बेला) अथवा उसके समान तप का प्रायच्छित लगता है ।

[श्री महा कल्पसूत्र शास्त्र का हिन्दी अनुवाद]

षष्ठ प्रमाण

श्री महा निशीथ सूत्र में लिखा है कि जो पुरुष जिन मन्दिर बनावे, उसको बारहवां देवलोक तक की प्राप्ति होती है । यथा—

काउंपि जिणाययणेहिं, मंडियं सव्वमेयणीवट्टं ।
दाणाइ चउक्केणं, सढ्ढो गच्छेज्ज अच्चुयं जावनपरं ।।

अर्थ—जिन मंदिरों से पृथ्वी को मंडित (सुशोभित) करके, दानादिक चारों (दान, शील, तप और भावना) धर्म करके श्रावक यावत् बारहवें देवलोक तक जावें ।

सप्तम प्रमाण

श्री आवश्यक सूत्र में वग्गुर नामक श्रावक ने श्री पुरिमताल नगर में श्री मल्लिनाथजी का जिनमंदिर बनवाकर, सम्पूर्ण परिवार सहित जिनपूजा की ऐसा अधिकार आता है । यथा—

तत्तोय पुरिमेताल, वग्गुर-इसाण अच्चए पडिमं ।
मल्लिजिणाययण पडिमा, अन्नाएवंसिवहुगोठ्ठी ।।

अष्टम प्रमाण

आगमेतर साहित्य में सबसे प्राचीन जैन ग्रन्थ "उपदेशमाला", जो श्री महावीर भगवान के हस्त दीक्षित श्री धर्मदासगणि महाराज विरचित है, उसमें लिखा है कि—

✲ ✲ ✲ निक्खमण – नाण – निव्वाण, जम्मभूमीउ वंदइ जिणाणं ।। २३६ ।। ✲ ✲ ✲

अर्थः—श्रावक को (जैनों को) तीर्थङ्कर भगवान सम्बन्धि जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण (मोक्ष) आदि पवित्र कल्याणक भूमि की वंदना-स्पर्शना करनी चाहिए ।

इसी उपदेशमाला के श्लोक २४२ में लिखा है कि—

✲ ✲ ✲ साहूणं चेइयाण य, पडणीयं तह य अवण्णवायं च ।
जिणपवयणस्स अहियं सव्वत्थामेण वारेई ।।✲✲✲

"श्री उपमिति भव प्रपञ्चा कथा" के कर्ता पूज्य सिद्धर्षि गणि महाराज उक्त श्लोक की टीका करते हैं कि—

❂❂❂ साधूनां मुनीनां चैत्यानां जिनप्रासाद-प्रतिमानां च प्रत्यनीकं क्षुद्रोपद्रवकारिणं तथा अवर्णवादिनं कुवचनभाषकं जिनशासनस्य अहित कारिणं शत्रुभूतं जनं, सः श्रावकः समस्त प्राणेन स्वकीय सर्व शक्त्या, प्राणव्ययेनापि वारयति। शासनोन्नतिकरणस्य महोदय हेतुत्वात्। ❂❂❂

अर्थ—साधु तथा जिनमन्दिर एवं जिनप्रतिमा को तुच्छ उपद्रव करने वाले और उनका अनादर एवं कुवचन बोलकर अवर्णवाद करने वाले जैन शासन के शत्रुभूत व्यक्तिका जैन श्रावक सर्व सामर्थ्य-शक्ति से यावत् प्राणत्याग पूर्वक भी सामना-विरोध करें, क्योंकि शासनोन्नति करने से महोदय होता है।

नवम प्रमाण

१४ पूर्वधर श्री भद्रबाहु स्वामी महाराज श्री आवश्यक सूत्र में कहते हैं कि—

❂❂❂ अकसिण पवत्तगाणं विरया विरयाण एस खलु जुत्तो।
संसार पयणु करणे दव्वत्थए कूवदिट्ठंतो॥ ❂❂❂

अर्थः—सर्वथा व्रत में प्रवृत्त न हुए विरता-विरति अर्थात् श्रावक को यह (पुष्पादि से पूजा करण रूप द्रव्यस्तव) निश्चय ही युक्त-उचित है। संसार को पतला करने में अर्थात् घटाने में-क्षय करने में कूप का दृष्टान्त जानना।

दशम प्रमाण

"जंघाचारण तथा विद्याचारण मुनियों ने जिन प्रतिमा वान्दी है" इस कथन का उल्लेख श्री भगवती सूत्र शतक २०, उद्देश ९ में है—

✲✲✲ जंघाचारणस्स णं भंते ! तिरियं केवइए गइ विसए पन्नत्ता ? गोयमा से णं इत्तो एगेणं उप्पाएणं रुअगवरे दीवे समोसरणं करेइ, करइत्ता तहिं चेइआइं वंदइ, वंदइत्ता इहमागच्छइ इहमागच्छइत्ता, इह चेइयाइं वंदइ, जंघाचारणस्स गोयमा ! तिरियं एवइए गइविसए पन्नत्ता। ✲✲✲

अर्थ—हे भगवन् ! जंघाचारण मुनि का तिरछी गति का विषय कितना है ? हे गौतम ! वह यहाँ से एक उत्पात (छलांग) में रुचकवर (नामक तेरहवाँ) द्वीप में समवसरण (विश्राम) करे, करके वहाँ के चैत्य अर्थात् जिनमन्दिर (शाश्वता जिन मंदिर-सिद्धायतन) को वांदे, वांदकर वहाँ से वापस लौटते दूसरे उत्पात में नन्दीश्वरद्वीप में समवसरण (विश्राम) करे, विश्राम करके वहाँ के (शाश्वत जिन) चैत्य यानी जिन मन्दिर को वांदे, वांदकर यहाँ (भरत क्षेत्र में) आवे, यहाँ आकर यहाँ के (अशाश्वत) जिन चैत्य यानी जिनमंदिर वांदे। हे गौतम ! जंघाचारण मुनि का तिरछीगति का विषय इतना (जानना) है।

विद्याचारण मुनि के जिन प्रतिमा वन्दन के विषय में श्री भगवती सूत्र में पाठ है कि—

✲✲✲ विज्जाचारणस्स णं भन्ते ! तिरियं केवइए गइ विसए पन्नत्ते ? गोयमा ! सेणं इत्तो एगेण उप्पाएणं माणुसोत्तरे पव्वए समोसरणं करेइ, करइत्ता तहिं चेइआइं वन्दइ, वन्दइत्ता बीएणं उप्पाएणं णंदिसरवर दीवे समोसरणं करेइ करइत्ता तहिं चेइआइं वन्दइ, वंदइत्ता तओ पडिनियत्तइ इहमागच्छइ, इहमागच्छइत्ता इह चेइआइं वंदइ। विज्जाचारणस्स णं गोयमा तिरियं एवइए गइ विसए पण्णत्ते।

[भगवतीसूत्र, २० शतक, ९ उद्देश]

अर्थ—हे भगवन् ! विद्याचारण मुनि का तिरछी गति का विषय कितना है ? हे गौतम ! वह यहाँ से एक उत्पात (उड़ान) में मानुषोत्तर पर्वत पर समवसरण (विश्राम) करे, विश्राम करके वहाँ के

चैत्य यानी जिनमन्दिर को जुहारे-वंदन करे, वान्द कर दूसरे उत्पात में नन्दीश्वर द्वीप में समवसरण (विश्राम) करे (रुके)। विश्राम कर के नन्दीश्वर द्वीप के चैत्य यानी जिनमन्दिर को वान्दे, जिनमन्दिर को वान्द कर यहाँ वापस लौटे। यहाँ आकर (मध्यलोक स्थित–भरत क्षेत्र के अशाश्वत) जिन मन्दिर को वान्दे-जुहारे। हे गौतम ! विद्याचारण मुनि का तिरछी गति का इतना विषय है।

एकादश प्रमाण

श्री पंचाशक प्रकरण में १४४४ ग्रन्थ के रचयिता, परम सत्य प्रिय पूज्य हरिभद्रसूरिजी महाराज लिखते हैं कि "गृहस्थों के पास स्वयं के उपभोग की जो सामग्री है उनका सर्वश्रेष्ठ उपयोग भगवान श्री तीर्थंकरों में विनियोग है यथा—

"न य अन्नो उवओगो, एएसिं सियाणं लट्ठयरो"

इस गाथा [श्लोक] की टीका करते हुए नवांगी टीकाकार पूज्यपाद श्री अभयदेवसूरिजी महाराज लिखते हैं कि—

न नैव, च समुच्चये अन्यो जिनपतिपूजातोऽपरः उपयोगो विनियोगस्थानम्, एतेषां प्रवरसाधनानां सतां विद्यमानानां लष्टतरः प्रधानतरो भवति........अतः प्रवर पुष्पादिभिः पूजा विधेया इति गाथार्थः।

अर्थ - विद्यमान् प्रवर [श्रेष्ठ] साधनों [वस्त्र-पुष्प-फल-आदि] का जिनेन्द्र भगवान की पूजा से बढ़कर अन्य उत्तम उपयोग नहीं है। इसलिये पुष्पादि से जिनेश्वर भगवान की पूजा करनी चाहिए।

द्वादश प्रमाण

आगमेतर जैन साहित्य में सबसे प्राचीन प्रामाणिक "उपदेश-माला" नामक ग्रन्थ, जो श्री महावीर भगवान के हस्त दीक्षित शिष्य

पूज्य श्री धर्मदास गणि महाराज द्वारा रचित है, उसमें जैन श्रावक को हरदिन जिनमन्दिर में जिन प्रतिमा की अष्टप्रकारी पूजा करने का विधान है।

वंदइ उभओ कालंपि, चेइयाइं थइथुई परमो।
जिणवर-पडिमा-घर, धूव-पुप्फ-गंधच्चणु ज्जुत्तो ॥
[श्लोक–२३०]

अर्थ—स्तवन, स्तोत्र, स्तुति आदि से प्रधान (युक्त) होकर श्रावक तीनकाल श्री जिनेश्वर भगवान के मंदिर में जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा को पुष्प, धूप, गंध अर्चनादि से पूजन करें।

[उपदेशमाला शास्त्र]

त्रयोदश प्रमाण

परम सत्य प्रिय, तार्किक शिरोमणि, १४४४ ग्रंथ के रचयिता पूज्य श्री हरिभद्रसूरिजी महाराज जो विक्रम की आठवीं शताब्दि में हुए, आप "पंचाशक" शास्त्र में लिखते हैं कि—

जिणभवण-बिंबठावण-जत्ता-पूजाइ सुत्तओ विहिणा।
दव्वत्थओ त्ति नेयं, भावत्थय-कारणत्तेण ॥
श्री पंचाशक शास्त्र–६–३

उक्त गाथा का नवांगी टीकाकार पूज्यपाद श्री अभयदेव सूरिजी, जो विक्रम की बारहवीं शताब्दि में हुए, आप अर्थ-टीका करते हैं [मूल संस्कृत का हिन्दी में] कि—

शास्त्रोक्त विधि पूर्वक किये हुए जिनमन्दिर निर्माण, जिन प्रतिमा निर्माण, जिन प्रतिमा की जिन मन्दिर में प्रतिष्ठा, अष्टाह्निक महोत्सव रूप यात्रा, पुष्पादि से पूजा और स्तवन–स्तुति आदि गुणगान

स्वरूप अनुष्ठान सर्व विरति (चारित्र धर्म) रूप भावस्तव के कारण होने से द्रव्य स्तव (द्रव्य पूजा) है। [भावस्तव का कारण स्वरूप यह द्रव्यस्तव (पूजा) का तीर्थङ्कर भगवान ने भी काम-भोग की तरह निषेध नहीं किया है, अतः द्रव्य स्तव भगवान को अभिप्रेत-अनुमत-इष्ट है]

चतुर्दश प्रमाण

चौदह पूर्वधर श्रुतकेवलज्ञानी श्री भद्रबाहु स्वामी महाराज "श्री आवश्यक सूत्र" में लिखते हैं कि—उदायन राजा की प्रभावती राणी ने जिन मन्दिर बनवाया और तीन काल भगवान की पूजा-अर्चना करती थी। यथा—

❋ ❋ ❋ अंतेउर चेइयघरं कारियं पभावईए ण्हाताति।
संझं अच्चेइ, अन्नया देवी णच्चइ राया वीणा वायेइ ॥ ❋ ❋ ❋

भावार्थ—प्रभावती राणी ने अपने अंतेपुर (रहने के महल) में जिणघर यानी जिनमन्दिर बनवाया। प्रभावती राणी स्नान करके प्रभात-मध्यान्ह एवं सायंकाल तीन वक्त घर में रहा जिनमन्दिर में अर्चा-पूजा करती थी, एकदा राणी प्रभावती (भगवान के सामने) नृत्य करती है और स्वयं राजा वीणा बजाता है

पंचदश प्रमाण

भगवान श्री महावीर स्वामी के ग्यारह श्रमणोपासक [श्रावक] ने जिन प्रतिमा पूजी है। श्रावक प्रमुख श्री आनन्द श्रावक के विषय में श्री उपासक दशांग सूत्र में निम्न पाठ है—

❋ ❋ ❋ नो खलु मे भंते ! कप्पइ अज्जप्पभिइंचणं अन्न उत्थिया वा अन्न उत्थिय देवयाणि वा अन्न उत्थिय परिग्गहियाइं "अरिहंत चेइयाइं" वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा। —उवासगदसांग सूत्र ❋ ❋ ❋

उक्त सूत्र की टीका करते हुए नवांगी टीकाकार श्रीमद् अभयदेव सूरिजी महाराज लिखते हैं कि—

❂❂❂ नो खलु इत्यादि नो खलु मम भदंत ! हे भगवन् ! कल्पते युज्यते अद्य प्रभृति इतः सम्यक्त्व-प्रतिपत्ति-दिनादारभ्य निरतिचार-सम्यक्त्व परिपालनार्थं तद्यतनामाश्रित्य अन्नउत्थिएत्ति जैनयूथाद्यन्यद्यूथं संघान्तरं तीर्थान्तरमित्यर्थः तदस्ति येषां तेऽन्ययूथिकाः चरकादि कुतीर्थिकाः तान् अन्ययूथिक दैवतानि हरि-हरादीनि अन्य यूथिक परिगृहितानि वा "अर्हच्चैत्यानि अर्हत्-प्रतिमा-लक्षणानि" यथा भौत परिगृहितानि वीरभद्र-महाकालादिनि वन्दितुं वा अभिवादनं कर्तुं नमस्यतुं वा प्रणाम पूर्वक प्रशास्तध्वनिभिः गुणोत्कीर्त्तनं कर्तुम् ।

श्री उपासक दशांग सूत्र, प्रथमाध्ययने ❂❂❂

भावार्थ—हे भगवन् ! मुझे आज से (सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बाद) निम्न कथित बातें न कल्पे, जिससे मैं (आनन्द श्रावक) निरतिचार सम्यग्दर्शन का पालन कर सकूं । आज से लेकर मुझे जैन-संघ के अन्तर्गत अरिहंत और अरिहंत की प्रतिमा को छोड़कर अन्य तीर्थी चरक आदि, अन्य तीर्थी के देव हरि-हरादि और अन्य तीर्थी के ग्रहण किये अरिहंत के चैत्य अर्थात् जिन प्रतिमा को वंदन करना, नमस्कार करना नहीं कल्पे ।

[शास्त्र पाठों में जिनाज्ञा विपरीत या शास्त्रकर्ता महर्षियों के अभिप्राय के विपरीत कुछ भी लिखा गया हो तो मिच्छा मि दुक्कडम् ।]